तिब्बत और भूटान दो बार हो आया है। वह बड़ा सुखी है और परस्पर मिलकर आनंदोल्लास से रो पड़ा। उसने कनखल में जाड़े के दिन बिताये। जो करवा (कमण्डलु) आपने उसे दिया था वह उसके पास अभी भी है। वह लौट आ रहा है और इसी महीने में वृन्दावन पहुँचनेवाला है। अतएव उससे मुलाकात करने की आशा में मैंने अपना हरिद्वार जाना कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया है। शिवजी के उस ब्राह्मण भक्त से जो आपके साथ रहता है मेरा नमस्कार कहिए।

आपका,
विवेकानन्द

नमो भगवते रामकृष्णाय

वराहनगर मठ,
१९ नवम्बर १८८८

पूज्यपाद महाशय,

आपकी भेजी हुई दोनों पुस्तकें मुझे मिल गईं। आपका प्रेमपूर्ण पत्र पाकर मैं हर्ष से ओतप्रोत हो गया हूँ। वह आपके हृदय की विशालता तथा उदारता का प्रतीक है। मुझ जैसे भिक्षावृत्तिधारी संन्यासी पर जो आप इतनी कृपा करते हैं यह निःसन्देह मेरे पूर्व जन्म के पुण्य का फल है। आपने 'वेदान्त' का उपहार भेजकर न केवल मुझे बल्कि श्रीरामकृष्ण के समस्त संन्यासी मण्डल को

आजन्म ऋणी कर दिया है। वे सब आपको सादर प्रणाम करते हैं। मैंने आपसे जो पाणिनि व्याकरण की प्रति मंगाई है वह केवल अपने लिए नहीं, वास्तव में इस मठ में संस्कृत धर्मग्रन्थों का खूब अध्ययन हो रहा है। वेदों के लिए यहाँ तक कहा जा सकता है कि उनका व्यवहार बंगाल में बिलकुल नहीं रहा। इस मठ में बहुत से लोग संस्कृत जानते हैं और उनकी इच्छा है कि वे वेदों के संहितादि भागों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लें। मेरा विश्वास है कि बिना पाणिनि व्याकरण पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किए वेदों की भाषा में पारंगत होना असम्भव है और एकमात्र पाणिनि व्याकरण ही इस कार्य के लिए सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिए इसकी एक प्रति की आवश्यकता पड़ी। 'मुग्धबोध' व्याकरण जो हम लोगों ने बाल्यकाल में पढ़ी है, लघुकौमुदी से कई अंशों में अच्छी है। आप स्वयं एक गहरे विद्वान हैं, अतएव हमारे लिए इस विषय का निर्णय अच्छी तरह कर सकते हैं। अतः यदि आप समझते हैं कि (पाणिनिकृत) अष्टाध्यायी हमारे लिए सबसे अधिक सुविधाजनक है तो उसे भेजकर हमें आप सदा के लिए अनुगृहीत करेंगे। इस विषय में मैं यह कह दूँ कि आप अपनी सुविधा और इच्छा का ज़रूर ख्याल रखें। इस मठ में धैर्यवान, सक्षम और कुशाग्रबुद्धि वाले मनुष्यों की कमी नहीं है। मुझे आशा है कि गुरुकृपा से वे पाणिनीय पद्धति में पारंगत होकर बंगाल में वेदों का पुनरुज्जीवन करने में सफल होंगे। मैं आपकी सेवा में अपने पूज्य गुरुदेव के दो फोटो और उनके उपदेशों

के दो भाग जिन्हें किसी सज्जन ने संकलित और प्रकाशित किया है, भेजता हूँ। इन उपदेशों में आपको घरेलू भाषा और शैली मिलेगी। आशा है, आप इन्हें स्वीकृत करेंगे। मेरा स्वास्थ्य अब ठीक हो रहा है। आशा है प्रभुकृपा से मैं दो-तीन महीनों में आपसे मिलूँगा।

आपका,
विवेकानन्द

ईश्वरो जयति।

वराहनगर, कलकत्ता,
४ फरवरी १८८९

माननीय महाशय,

आज जब आपका पत्र, जिसमें आपने मुझे अपार्थिव काशीक्षेत्र में निमंत्रित किया है, मुझे मिला कुछ कारणों से मैं मन में कुछ उद्विग्नता और संकोच का अनुभव कर रहा हूँ। मैं इसे श्री विश्वेश्वर का आदेश मानकर स्वीकार कर रहा हूँ। इस समय मैं अपने गुरुदेव की जन्मभूमि की यात्रा कर रहा हूँ। परन्तु कुछ ही दिनों में मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा। जो काशी और विश्वनाथ के दर्शन से द्रवित नहीं होता वह पाषाण-हृदय है। मेरा स्वास्थ्य अब बहुत सुधर गया है। ज्ञानानन्द से मेरा नमस्कार

कहिये। जितनी जल्दी हो सकेगा मैं वहाँ पहुँचूंगा। यह सब विश्वेश्वर की इच्छा पर निर्भर है। अधिक मिलने पर।

भवदीय,

विवेकानन्द

श्री दुर्गा शरणम्

वराहनगर मठ,

२६ जून १८८९

पूज्यपाद महाशय,

कुछ विभिन्न कारणों से मैं आपको बहुत दिनों से पत्र नहीं भेज सका। कृपया क्षमा करेंगे। मुझे गंगाधर के समाचार अब मिल गये हैं। उसकी मेरे एक गुरुभाई से भेंट हुई। वे दोनों इस समय उत्तराखण्ड में हैं। हममें से चार इस समय हिमालय में हैं और अब गंगाधर को मिलाकर पाँच हो गये। शिवानन्द नामक एक गुरुभाई गंगाधर को केदारनाथ की राह में मिले। गंगाधर ने दो चिट्ठियाँ यहाँ भेजी हैं। हिमालय पर पहिले साल उसे तिब्बत जाने की अनुज्ञा नहीं मिली, परन्तु दूसरे साल मिल गई। लामा लोग उससे बहुत प्रेम करते हैं और उसने उनसे तिब्बती भाषा भी सीख ली है। उसका कहना है कि तिब्बत में नब्बे प्रतिशत जनसंख्या लामाओं की है। परन्तु सम्प्रति वे लोग तांत्रिक ढंग की उपासना ही

अधिक करते हैं। वह देश बहुत ठण्डा है। वहाँ सूखा मांस छोड़कर खाद्य पदार्थ कठिनाई से मिलते हैं। मेरा स्वास्थ्य तो ऐसा ही है, परन्तु मन में एक तूफ़ान सा उठ रहा है!

आपका,
विवेकानन्द

ईश्वरो जयति।

बागबाजार, कलकत्ता,
४ जुलाई १८८९

पूज्यपाद महाशय,

आपका पत्र कल पाकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। आपने मुझे लिखा है कि मैं गंगाधर से आपसे पत्रव्यवहार करने के लिए निवेदन करूँ। परन्तु मुझे उसकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती, क्योंकि यद्यपि उनकी चिट्ठियाँ मेरे पास आती रहती हैं, परन्तु वे किसी जगह दो या तीन दिन से अधिक नहीं ठहरते। इसलिए हमारी चिट्ठियाँ उन्हें नहीं मिल सकतीं।

मेरे संन्यास लेने से पूर्व के एक सम्बन्धी ने सिमुलतला (वैद्यनाथ के पास) में एक बंगला खरीदा है। स्थान स्वास्थ्यकर होने के कारण मैं कुछ दिन वहाँ ठहरा था। परन्तु ग्रीष्म की भयंकर गरमी के कारण मुझे दस्तों की बीमारी हुई और मैं वहाँ से भी चला आया हूँ।

मैं कह नहीं सकता कि मेरी कितनी प्रबल इच्छा काशी जाकर आपके दर्शन और सत्संग का लाभ प्राप्त करने की है। परन्तु सब कुछ भगवदिच्छा पर निर्भर है। जान पड़ता है कि हमारा और आपका पूर्वजन्म का कुछ हृदय-सम्बन्ध है, क्योंकि इस कलकत्ता शहर में बहुत से प्रतिष्ठित और धनी लोगों का प्रेम प्राप्त करके भी मैं कभी कभी उनकी संगति से ऊबने लगता हूँ और आपसे केवल एक दिन की भेंट होते ही मेरे हृदय पर ऐसा कुछ जादू का असर पड़ा कि मैं आपको अपना स्वजन और आध्यात्मिक जीवन का बन्धु समझने लगा हूँ। इसका यह कारण है कि आप भगवान के एक प्रिय भक्त हैं। दूसरा कारण यह है कि

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वम्।
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥*

अपने अनुभव और आध्यात्मिक साधना से प्रेरित जो उपदेश आपने मुझे दिये हैं, मैं उनके लिए आपका ऋणी हूँ। यह बिलकुल सच है और मुझे भी समय समय पर इसका अनुभव हुआ है कि भिन्न भिन्न प्रकार के अभिनव विचारों को मस्तिष्क में धारण करने के कारण मनुष्य को कभी कभी कष्ट उठाना पड़ता है।

---

* कालिदासकृत शाकुन्तल, अंक ५

'यह पूर्व जन्मों के स्नेह-सम्बन्धों और सौहार्द की अस्फुट स्मृतियों का फल है।'

परन्तु मेरे लिए तो इस समय एक नया रोग है। परमात्मा की कृपा पर मेरा अखण्ड विश्वास है। वह कभी कम होनेवाला नहीं। धर्मग्रंथों पर मेरी अटूट श्रद्धा है। परन्तु प्रभु की इच्छा से मेरे गत छः सात वर्ष निरन्तर विघ्न-बाधाओं से लड़ते हुए बीते। मुझे आदर्श शास्त्र-ज्ञान प्राप्त हुआ है; मैंने एक आदर्श महापुरुष के दर्शन किये हैं, फिर भी किसी वस्तु का अन्त तक निर्वाह मुझसे नहीं हो पाता। यही मेरे लिए बड़े परिताप की बात है। विशेषतः कलकत्ते के आसपास रहकर मुझे सफलता पाने की कोई आशा नहीं। कलकत्ते में मेरी माँ और दो भाई रहते हैं। मैं सब से बड़ा हूँ। दूसरा भाई एफ. ए. की तैयारी कर रहा है और तीसरा अभी छोटा है।

वे लोग पहले काफी सम्पन्न थे, पर मेरे पिता के मरने से उनका जीवन कष्टमय हो गया है। कभी कभी तो उन्हें भूखा रहना पड़ता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्हें असहाय पाकर कुछ सम्बन्धियों ने उन्हें पैत्रिक घर से भी निकाल दिया है। कुछ भाग तो हाइकोर्ट में मुकदमा लड़कर पुनः प्राप्त कर लिया गया है। परन्तु वे मुकदमेबाज़ी के कारण धनहीन हो गए हैं।

कलकत्ते के पास रहकर मुझे अपनी आँखों उनकी दुरवस्था देखनी पड़ती है। उस समय मेरे मन में रजोगुण जाग्रत हो उठता है और मेरा अहंभाव कभी कभी उस भावना में परिणत हो जाता है जिसके कारण कार्यक्षेत्र में कूद पड़ने की प्रेरणा होती है। ऐसे

क्षणों में मैं अपने मन में एक भयंकर अन्तर्द्वन्द्व का अनुभव करता हूँ। यही कारण है कि मैंने लिखा था कि मेरा मन बहुत उद्विग्न रहता है। अब उनकी मुकदमेबाज़ी खत्म हो चुकी है। आशीर्वाद दीजिये कि कुछ दिन कलकत्ते में ठहरकर उन सब मामलों को सुलझाने के बाद मैं इस स्थान से सदा के लिए बिदा ले सकूँ।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥*

मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मेरा हृदय महान् दैवी शक्ति से बलशाली हो और मैं सारे मायाबन्धनों को तोड़कर अलग कर सकूँ। 'For we have taken up the Cross, Thou hast laid it upon us and grant us strength that we bear it unto death. Amen!'—(Imitation of Christ) (क्योंकि हमने क्रास ले लिया है, तूने उसे हमारे कन्धों पर रक्खा है। हमें शक्ति दे कि हम उसे मृत्यु पर्यन्त वहन कर सकें। ॐ शान्तिः!)

---

* भगवद्गीता, २।७०

'चारों ओर से (पानी) भरते जाने पर भी जिसकी मर्यादा नहीं डिगती ऐसे समुद्र में जिस प्रकार सब पानी चला जाता है, उसी प्रकार जिस पुरुष में समस्त विषय (उसकी शान्ति भङ्ग हुए बिना ही) प्रवेश करते हैं, उसे ही (सच्ची) शान्ति मिलती है, विषयों की इच्छा करनेवालों को नहीं।

इस समय मैं कलकत्ते में ठहरा हूँ। मेरा पता यह है:—
बलराम बसु, ५७, रामकान्त बोस स्ट्रीट, बागबाजार, कलकत्ता।

आपका,
विवेकानन्द

ईश्वरो जयति।

वराहनगर, कलकत्ता,
७ अगस्त १८८९

पूज्यपाद,

आपका पत्र आये एक सप्ताह से ऊपर हो गया, परन्तु मुझे फिर ज्वर आ गया था, इस कारण मैं अबतक उत्तर नहीं दे पाया। इसके लिए कृपया क्षमा करेंगे। बीच में डेढ़ महीने तक मैं ठीक था, पर दस दिन हुए फिर बीमार पड़ गया था। अब स्वास्थ्य लाभ कर रहा हूँ। मुझे कुछ प्रश्न करने हैं, और चूँकि आप संस्कृत के एक बड़े विद्वान हैं मेरे निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देकर मुझे कृतार्थ करेंगे।

(१) क्या छान्दोग्य उपनिषद् के अतिरिक्त वेदों में और कहीं सत्यकाम जाबालि और जानश्रुति की कथा आयी है?

(२) जहाँ कहीं भगवान शंकराचार्य अपने वेदान्त-सूत्रों के भाष्य में स्मृति का उदाहरण देते हैं तो वे प्रायः महाभारत का प्रमाण देते हैं। परन्तु इस बात का पूरा प्रमाण वनपर्व के अजगरो-

पाख्यान में एवं उमा-महेश्वर-संवाद में, तथा भीष्मपर्व में पाकर कि जाति का आधार गुणकर्म है उन्होंने इसका उल्लेख कहीं अपने अन्य ग्रंथों में किया है?

(३) वेदों के पुरुषसूक्त के अनुसार जातिविभाग वंशपरम्परा-नुगत नहीं है। फिर वेदों में इस बात का कहाँ उल्लेख हुआ है कि जाति जन्म से है।

(४) श्री शंकराचार्य ने वेदों से इस बात का कोई प्रमाण नहीं निकाला कि शूद्र वेदाध्ययन का अधिकारी नहीं। उन्होंने केवल 'यज्ञेऽनवक्लृप्तः' का प्रमाण इसलिए दिया है कि जब वह (शूद्र) यज्ञ करने का अधिकारी नहीं है तो अवश्य ही उपनिषदादि पढ़ने का भी उसे अधिकार नहीं है। परन्तु उन्हीं आचार्य ने 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की व्याख्या करते हुए 'अथ' के अर्थ के सम्बन्ध में कहा है कि उसका अभिप्राय 'वेदाध्ययन के पश्चात्' नहीं है, क्योंकि संहिता और ब्राह्मण भाग का अध्ययन किये बिना उप-निषद नहीं पढ़े जा सकते, यह विधान अप्रमाण है और साथ ही वैदिक कर्मकाण्ड और वैदिक ज्ञानकाण्ड में कोई पूर्वापर भाव नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि वेदों के कर्मकाण्डीय ज्ञान के बिना भी किसीको उपनिषद् पढ़कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो सकता है। अतएव यदि कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड में कोई पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है तो शूद्रों के विषय में 'उसी तर्क के अनुसार' ('न्यायपूर्वकम्') इस

प्रकार अपने ही कथन के विरुद्ध वाक्यप्रयोग आचार्य ने क्यों किया ? शूद्र को उपनिषदों का अध्ययन क्यों न करना चाहिए ?

मैं आपके पास एक ईसाई संन्यासी लिखित 'इमिटेशन आफ क्राइस्ट' ('ईसामसीह का पदानुसरण') नामक पुस्तक डाक द्वारा भेज रहा हूँ। यह एक अद्भुत ग्रंथ है। ईसाइयों में भी त्यागवृत्ति, वैराग्य और दास्यभक्ति के कितने ऊँचे उदाहरण हैं यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है। कदाचित् आपने यह पुस्तक पहले पढ़ी हो, यदि नहीं पढ़ी तो कृपया अवश्य पढ़िए।

आपका,

विवेकानन्द

ईश्वरो जयति।

वराहनगर,

१७ अगस्त १८८९

पूज्यपाद,

आपने पिछले पत्र में लिखा है कि जब मैं आपको आदरसूचक शब्दों में सम्बोधित करता हूँ तो आपको बहुत संकोच होता है। किन्तु इसमें मेरा कुछ दोष नहीं। इसका उत्तरदायित्व तो आपके सद्गुणों पर है। मैंने पिछले पत्र में लिखा था कि आपके सद्गुणों से जो मैं आपकी ओर आकर्षित होता हूँ उससे यह प्रतीत होता

है कि हमारा आपका पूर्व जन्म का कुछ सम्बन्ध है। मैं एक गृहस्थ और संन्यासी में कुछ भेद नहीं समझता और जहाँ कहीं हृदय की विशालता, मन की पवित्रता एवं शान्ति पाता हूँ वहाँ मेरा मस्तक आदर से झुक जाता है। आजकल जितने लोग संन्यास ग्रहण करते हैं—ऐसे लोग जो वास्तव में आदर के भूखे हैं, जीवन निर्वाह के निमित्त त्याग का दिखावा करते हैं और जो गृहस्थ और संन्यास इन दोनों के आदर्शों से गिरे हुए होते हैं—उनमें कम से कम एक लाख में एक तो आपके जैसा महात्मा निकले ऐसी मेरी प्रार्थना है। मेरे जिन ब्राह्मण गुरुभाइयों ने आपके सद्गुणों की चर्चा सुनी है वे सब आपको सादर प्रणाम करते हैं।

मेरी जिन अनेक शंकाओं का आपने उत्तर द्वारा समाधान किया है उनमें मेरा एक भ्रम तो दूर हो गया है। इसके लिए मैं आपका चिर अनुगृहीत रहूँगा। इन प्रश्नों में एक और यह था कि, क्या भगवान शंकराचार्य ने गुणकर्मानुसार जाति-विभाग पर, जिसका उल्लेख महाभारत इत्यादि पुराणों में हुआ है, अपना स्पष्ट निर्णय दिया है? अगर दिया है तो कहाँ मिलेगा? इस देश की प्राचीन रूढ़ि के अनुसार जाति-विभाग जन्म के अनुसार होता आया है और इसमें सन्देह नहीं कि समय समय पर शूद्रों के साथ वैसा ही व्यवहार होता होगा जो स्पार्टा के लोगों ने वहाँ के हेलट्स (अस्पृश्यों) के साथ किया और आज भी अमेरिका में हबशियों के साथ किया जाता है। मैं तो जाति-पाँति के मामले में कोई पक्षपात नहीं रखता, क्योंकि मैं जानता हूँ

कि यह एक सामाजिक नियम है—गुण एवं कर्म से प्रसूत है। यदि कोई नैष्कर्म्य एवं निर्गुणत्व को प्राप्त करना चाहता हो तो उसे अपने मन में किसी प्रकार का जाति-भेद रखना हानिकर है। इन मामलों में गुरु के प्रसाद से मेरे कुछ निश्चित विचार हैं, परन्तु यदि मैं आपके विचार जान सकूँ तो मैं उनके आधार पर अपने कुछ मतों की परिपुष्टि कर सकूँगा और शेष का संशोधन। मधुमक्खी के छत्ते को बाँस से बिना कोंचे हुए शहद नहीं टपक सकता। अतः मैं आपसे कुछ प्रश्न और करूँगा। मुझको अज्ञ और बालक समझकर बिना किसी प्रकार का क्रोध किये कृपया यथार्थ उत्तर देंगे।

(१) वेदान्त-सूत्र में जिस मुक्ति का वर्णन हुआ है, क्या उसमें और अवधूत-गीता तथा अन्य ग्रंथों में वर्णित निर्वाण में कोई भेद है या नहीं?

(२) यदि 'जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च।'* इस सूत्र के अनुसार किसी को पूर्ण ईश्वरत्व प्राप्त नहीं होता तो निर्वाण का वास्तव में क्या अर्थ है?

(३) यह कहा जाता है कि चैतन्यदेव ने सार्वभौम से पुरी में कहा, "मैं व्यास के सूत्रों को समझता हूँ। वे द्वैतात्मक हैं; परन्तु भाष्यकारों ने उन्हें अद्वैतात्मक बना दिया है यह बात समझ

---

* इस सूत्र के अनुसार सृष्टि, स्थिति और प्रलय इन तीनों कर्मों का कर्ता तो केवल ईश्वर है। जो जीव मुक्त हो जाते हैं उन्हें इन उपर्युक्त तीन शक्तियों के अतिरिक्त सभी दैवी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

में नहीं आती।" क्या यह सच है? किम्वदन्ती के अनुसार चैतन्यदेव का प्रकाशानन्द सरस्वती से इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ और चैतन्यदेव की विजय हुई। कहते हैं कि चैतन्यदेव द्वारा लिखित एक भाष्य प्रकाशानन्दजी के मठ में था।

(४) तंत्र में आचार्य शंकर को प्रच्छन्न बुद्ध (छिपे हुए बुद्ध) कहा गया है। बौद्ध महायान के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रज्ञापारमिता' में वर्णित सिद्धान्त आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित वेदान्त मत से बिलकुल मिलता-जुलता है। पंचदशीकार का भी यह कहना है कि "जिसे हम लोग ब्रह्म कहते हैं वही तत्वतः बौद्धों का शून्य है।" इस सब का क्या अर्थ है?

(५) वेदान्त-सूत्रों में वेदों के प्रमाण के विषय में कोई कारण क्यों नहीं दिये गये? पहले तो यह कहा गया है कि वेद परमात्मा के अस्तित्व के प्रमाण हैं और फिर यह बताया गया है कि वेद 'परमात्मा के निःश्वसित हैं' इसीलिये प्रमाण हैं। अब यह बताइये कि पश्चिमी तर्कशास्त्र के अनुसार यह कथन एक 'वृत्तबद्ध तर्क' (Argument in a circle) के समान है या नहीं?

(६) वेदान्त श्रद्धा की अपेक्षा करता है, क्योंकि केवल तर्क से निर्णय नहीं हो सकता। तो फिर शास्त्रार्थ करनेवाले पण्डितों ने सांख्य और न्याय की पद्धतियों में थोड़ीसी भी कमी पाकर उस पर आक्षेपों की इतनी बौछार क्यों की है? हम किसका विश्वास करें? जिसे देखिए वह अपने ही मत के प्रतिपादन के पीछे मतवाला है।

यदि व्यास के अनुसार स्वयं महासिद्ध* कपिलमुनि ने ही भूल की है तो कौन कह सकता है कि स्वयं व्यास ने उसकी अपेक्षा बडी भूल नहीं की? क्या कपिल वेदों को नहीं समझ सकें?

(७)· न्याय शास्त्र के अनुसार 'शब्द या वेद' (सत्य का प्रमाण) उनकी वाणी है जो सर्वोच्च पद पर पहुँच चुके हैं या आप्त हैं। इस दृष्टि से ऋषि सर्वज्ञ हैं। तो फिर यह कैसे मानें कि वे 'सूर्य सिद्धान्त' के अनुसार इतने साधारण ज्योतिष-तत्वों के ज्ञाता नहीं थे? उनके कथनानुसार पृथ्वी त्रिकोण है और वासुकि नाग के सिर पर रक्खी है इत्यादि इत्यादि। इन सब बातों को देखते हुए भी हम यह कैसे मान लें कि उनकी बुद्धि-नौका हमें जन्म-मरण के इस भवसागर के पार पहुँचा देगी?

(८) यदि परमात्मा प्राणियों के सत्-असत् कर्मों के अनुसार ही उन्हें जन्म देता है तो फिर उसकी उपासना से हमें क्या लाभ? नरेशचन्द्र का एक सुन्दर गीत है जिसका आशय इस प्रकार है:—
"हे माता, यदि जो कुछ भाग्य में लिखा है उसका होना अवश्यम्भावी है तो फिर हम दुर्गा के पवित्र नाम को ले ले कर प्रार्थना क्यों करें?"

---

* 'सिद्धानां कपिलो मुनिः'—गीता, १०।२६

वेदान्तसूत्र-भाष्य, २।१।१ में शंकर नें वैदिक कपिल और सांख्यकार कपिल के एक होने में सन्देह प्रकट किया है।

(९) माना कि एक ही विषय पर जब अनेक वाक्य एकमत हैं तब उसका एक दो वाक्यों द्वारा विरोध मान्य नहीं हो सकता। मधुपर्क* और इसी प्रकार की दूसरी चिरप्रचलित प्रथाओं का अश्वमेध, गोवध, संन्यास, श्राद्ध में मांसपिण्डदान आदि द्वारा क्यों निषेध हो जाता है?

यदि वेद नित्य हैं तो फिर इन कथनों में कहाँ तक सत्य है कि "धर्म की यह विधि द्वापर के लिए है," और "यह कलियुग के लिए है" इत्यादि इत्यादि?

(१०) जिस परमात्मा ने वेदों का निर्माण किया उसीने फिर बुद्धावतार धारण कर उनका खण्डन किया। इन धर्मादेशों में किसका अनुगमन किया जाय? इनमें से किसको प्रमाणस्वरूप माना जाय? पहले को या बादवाले को?

(११) तंत्र कहते हैं कि कलियुग में वेद-मंत्र व्यर्थ हैं। अब भगवान शिव के भी किस उपदेश का पालन किया जाय?

---

* मधुपर्क एक वैदिक विधि थी जिसके अनुसार किसी अतिथि के सत्कारार्थ उसके सम्मुख बहुत से सुस्वादु भोज्य पदार्थ, जिनमें गोमांस भी था, रक्खे जाते थे। जिस वाक्य का स्वामीजी ने उल्लेख किया है वह अंशतः ऐसे भोजन का निषेध करता है, क्योंकि पूरे वाक्य का अर्थ यह है कि कलियुग में पाँच कर्म निषिद्ध हैं—१ अश्वमेध, २ गोवधं, ३ श्राद्ध में मांसपिण्डदान, ४ संन्यास-ग्रहण, और पति के अभाव में देवर के द्वारा प्रजोत्पादन करना।

"अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पंचविवर्जयेत्॥"

(१२) व्यास का वेदान्त-सूत्र में यह स्पष्ट कथन है कि वासुदेव, संकर्षणादि चतुर्व्यूह उपासना ठीक नहीं है। फिर वे ही व्यास भागवत में इसी उपासना के गुणानुवाद गाते हैं। तो क्या व्यास पागल थे?

इनके अतिरिक्त मेरी और बहुतसी शंकाएँ हैं। उनके समाधान की आशा से मैं भविष्य में उन्हें आपके सम्मुख उपस्थित करूँगा। इस प्रकार के प्रश्न बिना साक्षात् मिले भली प्रकार प्रकट नहीं किये जा सकते। अतएव मेरा इरादा है कि मैं जब गुरुकृपा से निकट भविष्य में आपसे मिलूँगा उसी समय वे सब प्रश्न करूँगा।

मैंने ऐसा कहते सुना है कि बिना साधना के धर्म सम्बन्धी इन विषयों पर केवल युक्ति आदि के बल से किसी निर्णय पर पहुचँ ना असम्भव है। पर शुरू में कम से कम कुछ परिमाण में आश्वस्त तो होना ही चाहिए।

भवदीय,
विवेकानन्द

श्री दुर्गा शरणम्।

बागबाजार, कलकत्ता,
२ सितम्बर १८८९

पूज्यपाद,

कुछ दिन हुए मुझे आपके दो कृपापत्र प्राप्त हुए थे। आप में ज्ञान और भक्ति का इतना आश्चर्यपूर्ण समन्वय है यह जानकर मुझे

बड़ा हर्ष हुआ। आपने मुझे जो यह उपदेश दिया है कि मैं तर्क और विवाद करना छोड़ दूँ यह वास्तव में उचित है। मानव जीवन का अन्तिम ध्येय तर्क और सन्देह से परे होना है, क्योंकि मुण्डकोपनिषद में लिखा है, "जिसको आत्म-दर्शन होता है उसकी हृदय की ग्रंथियाँ खुल जाती हैं, उसके सारे संशय दूर हो जाते हैं और कर्मों का नाश हो जाता है।"* किन्तु मेरे गुरुदेव कहा करते थे, "जब घड़े को पानी में डुबाकर भरा जाता है उस समय उस से गल् गल् ध्वनि होती है, परन्तु भर जाने के बाद उसमें से कोई ध्वनि नहीं होती। मेरी दशा ठीक ऐसी ही है।" दो-तीन सप्ताह के बाद मैं आपके दर्शन करूँगा। परमात्मा मेरी यह इच्छा पूर्ण करें।

आपका,

विवेकानन्द

ईश्वरो जयति।

वराहनगर, कलकत्ता,

१३ दिसम्बर, १८८९

पूज्यपाद,

आपके पत्र से सब हाल मिले। उसके बाद राखाल का पत्र मिला जिससे आपकी और उनकी भेंट का हाल मालूम हुआ। आपकी

---

* भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥
—मुण्डकोपानिषद, २।२।८

लिखी हुई छोटी पुस्तक मिली। जब से यूरोप में 'शक्ति-संचय' (Conservation of Energy) के सिद्धान्त का आविष्कार हुआ है तब से वहाँ एक प्रकार का वैज्ञानिक अद्वैतवाद फैल रहा है। किन्तु वह सब परिणामवाद है। यह अच्छा हुआ कि आपने उसमें और शंकराचार्य के विवर्तवाद में भेद स्पष्ट कर दिया है। जर्मन अतीतवादियों* (Transcendentalists) के सम्बन्ध में स्पेन्सर के विडम्बन का जो उद्धरण आपने किया वह मुझे जँचा नहीं! स्पेन्सर ने स्वयं उनसे बहुत कुछ सीखा है। आपका विरोधी 'गफ' (Gough) अपने 'हेगल' को समझ सका है या नहीं, इसमें सन्देह है। जो हो, आपका उत्तर काफी तीक्ष्ण एवं अकाट्य है।

आपका,
विवेकानन्द

(श्रीयुत बलराम बोस महाशय को लिखित)

श्रीरामकृष्ण जयति।

इलाहाबाद,
५ जनवरी १८९०

प्रिय महाशय,

आपके कृपापत्र से यह जानकर कि आप बीमार हैं मुझे बड़ा दुःख हुआ। आपके वैद्यनाथ आने के बारे में जो मैंने लिखा था

---

* इनके मतानुसार इन्द्रियजन्य-ज्ञान-निरपेक्ष स्वतःसिद्ध और भी एक प्रकार का ज्ञान है।

उसका सारांश यह है कि आपके समान नाजुक प्रकृतिवाले और कमज़ोर के लिए वहाँ रहना असम्भव है जब तक कि आप बहुत सा रुपया न खर्च करें। यदि जलवायु का परिवर्तन वास्तव में वांछनीय है और आप किसी सस्ती जगह की खोज के लिए ही अभी तक आगा-पीछा कर रहे हैं तो यह खेद का विषय है....।

वैद्यनाथ की हवा तो बड़ी अच्छी है, पर पानी वहाँ का खराब है। उससे पेट में गड़बड़ी हो जाती है। मुझे तो वहाँ रोज ही खट्टी डकारें आने लगी थीं। मैंने आपको एक पत्र लिखा है; वह आपको मिला या आपने उसे बैरंग चिट्ठी होने के कारण वापस कर दिया? अगर आपको बाहर जाना ही अभीष्ट है तो जल्दी कीजिए। परन्तु क्षमा कीजिए, अपने स्वभाव के अनुसार आप प्रत्येक वस्तु को अपने मनोनुकूल ही, आदर्श रूप में देखना चाहते हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश संसार में ऐसा संयोग क्वचित् ही प्राप्त होता है। 'आत्मानं सततं रक्षेत्'—प्रत्येक परिस्थिति में अपनी रक्षा करते रहनी चाहिए। भगवत्कृपा से सब कुछ होता है, फिर भी प्रभु अपने पैरों खड़े होनेवाले को सहारा देते हैं। यदि मितव्ययिता ही आपका उद्देश्य है तो क्या आपके जलवायु के परिवर्तन के लिए ईश्वर अपने बापदादों की कमाई से निकालकर आपको धन देगा? यदि आपको परमात्मा का इतना भरोसा है तो फिर बीमार होने पर डाक्टर क्यों बुलाते हैं? यदि यह आपको अनुकूल नहीं जान पड़ता तो आप बनारस चले जाइए। मैं कब का यहाँ से चला गया

होता, पर यहाँ के महानुभाव मुझे जाने ही नहीं देते। फिर भी मैं कहूँगा कि यदि जलवायु-परिवर्तन नितान्त अभीष्ट है तो कृपया मितव्ययता के कारण आगा-पीछा न कीजिए। ऐसा करना आत्म-घात होगा और आत्मघाती की रक्षा ईश्वर भी नहीं कर सकता। तुलसी बाबू और अन्य मित्रों से मेरा नमस्कार कहिए। साभिवादन,

आपका,
विवेकानन्द

ॐ विश्वेश्वरो जयति।

गाजीपुर,
४ फरवरी १८९०

पूज्यपाद,

आपका कृपापत्र मिला। बड़े भाग्य से बाबाजी से साक्षात्कार हुआ। वास्तव में वे एक महापुरुष हैं—बड़े आश्चर्य की बात है। इस नास्तिकता के युग में भक्ति एवं योग की आश्चर्यजनक क्षमता के वे अद्भुत प्रतीक हैं। मैं उनकी शरण में गया और उन्होंने मुझे आश्वासन दिया है, जो हर एक के भाग्य में नहीं। बाबाजी की इच्छा है कि मैं कुछ दिन यहाँ ठहरूँ, वे मेरा उपकार करेंगे। अतएव इन महापुरुष की आज्ञानुसार मैं कुछ दिन और यहाँ ठहरूँगा। निःसन्देह इससे आप भी आनंदित होंगे। बड़ी

विचित्र कथाएँ हैं। पत्र में न लिखूँगा। मिलने पर बतलाऊँगा। ऐसे महापुरुषों का साक्षात्कार बिना शास्त्रों पर पूर्ण विश्वास के नहीं होता।

सेवक,
विवेकानन्द

विश्वेश्वरो जयति।

गाजीपुर,
७ फरवरी १८९०

पूज्यपाद,

आपका पत्र अभी मिला। बड़ा हर्ष हुआ। बाबाजी देखने में वैष्णव प्रतीत होते हैं; उन्हें योग, भक्ति एवं विनय की प्रतिमा कहनी चाहिए। उनकी कुटी के चारों ओर दीवारें हैं। दरवाजे बहुत थोड़े हैं। परकोटे के भीतर एक सुरंग है जहाँ वे समाधिस्थ पड़े रहते हैं। सुरंग से बाहर आने पर ही वे दूसरों से बातचीत करते हैं। किसी को यह नहीं मालूम कि वे क्या खाते-पीते हैं। इसीलिए लोग उन्हें पवहारी* बाबा कहते हैं। एक बार जब वे पाँच साल तक सुरंग से बाहर नहीं निकले तो लोगों ने समझा कि उन्होंने शरीर त्याग दिया है। किन्तु वे फिर उठ गये। पर इस बार वे लोगों के सामने निकलते नहीं और बातचीत भी द्वार के भीतर

---

* केवल पवन का आहार करने वाले

से ही करते हैं। इतनी मीठी वाणी मैंने कहीं नहीं सुनी, वे प्रश्नों का सीधा उत्तर नहीं देते, बल्कि कहते हैं कि 'दास क्या जाने।' परन्तु बात करते करते अग्नि बाहर निकलती है। मेरे बहुत आग्रह करने पर उन्होंने कहा, 'कुछ दिन यहाँ ठहरने की कृपा कीजिए।' परन्तु वे इस तरह कभी नहीं बोलते। इसलिए इससे मैंने यह समझा है कि वे मुझे आश्वासन देना चाहते हैं और जब कभी मैं हठ करता हूँ तो वे मुझे ठहरने के लिए कहते हैं। आशा में अटका पड़ा हूँ। वे निःसन्देह बड़े विद्वान हैं, पर कुछ प्रकट नहीं होता। वे शास्त्रोक्त कर्मकाण्ड करते हैं। पौर्णिमा से संक्रान्ति तक होम होता रहता है। अतएव यह निश्चय है कि वे इस अवधि में गुफा में प्रवेश न करेंगे। मैं उनकी अनुज्ञा किस प्रकार माँगूं? वे तो कभी सीधा उत्तर ही नहीं देते। 'यह दास', 'मेरा भाग्य' इत्यादि इत्यादि कहते रहते हैं। अगर आपकी भी इच्छा हो तो पत्र पाते ही तुरन्त चले आइए; अन्यथा उनके शरीर त्याग के बाद पछताना पड़ेगा। दर्शन करके दो दिन में लौट जाइए। कहने का मतलब यह कि बाहर से बातचीत हो जाएगी। मेरे मित्र सतीश बाबू आपका बड़ा सत्कार करेंगे। इस पत्र के पाते ही सीधे चले आइए। इस बीच में मैं बाबाजी को आपके विषय में सूचना दे दूँगा।

सेवक,

विवेकानन्द

पुनश्च—उनका सत्संग तो किसीको प्राप्त होता नहीं, फिर भी ऐसे महापुरुष के लिए कुछ भी कष्ट उठाना निरर्थक न होगा।—त्रि०

(स्वामी सदानन्द को लिखित)

१४ फरवरी १८९०

प्रियवर,

आशा है तुम कुशलपूर्वक हो। अपनी आध्यात्मिक साधनाओं में लगे रहो और अपने को सबका विनम्र दास समझकर सेवा करते रहो। जिनके पास तुम ठहरे हो उनका दासानुदास बनने और उनकी चरणरज लेने का मैं भी पात्र नहीं हूँ। इस भाव से उनकी सेवा करो और उनके प्रति भक्तिभाव रखो। यदि वे कभी तुमको प्रसंगवश गाली भी दें या कभी विवश होकर मार बैठें तो भी तुम्हें क्रोध नहीं आना चाहिए। स्त्रियों के साथ कभी न रहो। क्रमशः शरीर को सहनशील बनाओ और मिली हुई भिक्षा से ही गुजर-बसर करने का अभ्यास करो। जो भी रामकृष्ण का नाम ले उसे अपना गुरु समझो। स्वामी तो सभी हो सकते हैं, पर सेवक होना कठिन है। विशेषतः तुम शशी का अनुसरण करो। यह निश्चय मानो कि बिना दृढ़ गुरुनिष्ठा और अटल धैर्य तथा

अध्यवसाय के कुछ भी नहीं हो सकता। पूर्ण सच्चरित्रता का पालन करो, उससे तिलभर भी इधर उधर डिगे कि पतन के गर्त में गिरे।

भवदीय,

विवेकानन्द

(श्रीयुत बलराम बोस महाशय को लिखित)

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय

मार्फत सतीश मुखर्जी,
गोराबाजार, गाजीपुर,
१४ फरवरी १८९०

पूज्यपाद,

मुझे आपका वेदनापूर्ण पत्र मिला। मैं अभी यहाँ से शीघ्र न निकल सकूँगा। बाबाजी (पवहारी बाबा) की विनय को ठुकरा देना असम्भव है। आपको इस बात का पछतावा है कि आपने साधुओं की सेवा करके कोई बड़ा लाभ नहीं उठाया। यह सच है और नहीं भी। चिर शान्ति की दृष्टि से तो यह सच है, परन्तु यदि आप साधनारम्भ की दशा की ओर सिंहावलोकन करें तो आपको मालूम होगा कि पहले आप पशु थे, अब मानव हैं और आगे चलकर आप एक देवता अथवा स्वयं परब्रह्म हो जाएँगे। आपका इस प्रकार का पश्चात्ताप और असन्तोष आपकी भावी उन्नति का सूचक है। उसके बिना

उन्नति होना असम्भव है। जो चुटकी बजाते ही ईश्वर के दर्शन पा लेता है उसके लिए इसके आगे उन्नति का रास्ता बंद समझिए। इस प्रकार का असन्तोष तो एक वरदान है। विश्वास मानिए, कोई भय की बात नहीं है। आप स्वयं समझदार हैं। आपसे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि धैर्य ही सफलता की कुंजी है। इस बारे में यह कहने में मुझे कोई शंका नहीं है, कि हम जैसे अपरिपक्व बुद्धिवाले बालकों को आपसे बहुत कुछ सीखना है। बुद्धिमान को इशारा काफी है। आदमी के कान तो दो होते हैं पर मुँह एक ही होता है। विशेषकर आप स्पष्टवक्ता हैं और बड़े बड़े वादे करने के पक्ष में नहीं हैं। जब कभी मैंने आपका विरोध किया तो विचार करने पर मैंने आपको ही विवेकशील पाया है। 'धीरे धीरे परन्तु मुस्तैदी से कदम बढ़ाइए।' 'What is lost in power is gained in speed.' 'शक्ति के परिमाण में जो क्षति होती है उसकी पूर्ति गति के परिमाण में हो जाती है।' फिर भी इस संसार में सब कुछ शब्दों पर ही निर्भर है। शब्दों में निहित भावों को (विशेषतः आप जैसे मितभाषी के भावों को) समझना हर एक का काम नहीं है। किसी के अन्तःकरण तक पहुँचने के लिए उसके साथ कुछ दिन तक सहवास करना चाहिए। पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि धर्म सम्प्रदायविशेष में अथवा बाह्याडम्बर में नहीं है। इन बातों को आप क्यों भूल जाते हैं? कृपया अपनी शक्ति भर सम्हालने की कोशिश कीजिए। परन्तु उससे होनेवाले लाभ या हानि का निर्णय अपने अधिकार से बाहर

की बात है। गिरीश बाबू को बहुत बड़ा धक्का लगा है। इस समय उन्हें माताजी की सेवा से बहुत शान्ति मिलेगी। वे कुशाग्रबुद्धि हैं। गुरुदेव को आपमें पूरा विश्वास था। वे सिवाय आपके यहाँ और कहीं खाते पीते नहीं थे। मैंने सुना है कि माताजी को भी आप पर बड़ा विश्वास है। इन बातों पर विचार करके आप हम जैसे चंचलबुद्धि बालकों को अपना ही बच्चा समझकर हमारे दोषों को क्षमा करेंगे। इससे आगे और क्या कहूँ? वार्षिकोत्सव की तिथि की सूचना वापसी डाक से कृपया भेजिए। मैं इस समय कमर की पीड़ा से परेशान हूँ। कुछ ही दिनों में यह स्थान बहुत ही रमणीक हो जायगा; वहाँ मीलों तक खिले हुए गुलाबों की क्यारियों की शोभा दृष्टिगोचर होगी। सतीश कहते हैं कि वे तब कुछ ताजे गुलाब के फूल और डालियाँ उत्सव के लिए भेजेंगे। भगवान करें आपका पुत्र कायर न हो, मनुष्य बने।

आपका प्रिय,

विवेकानन्द

पुनश्च—माताजी आ गई हों तो उनसे मेरा अनेक बार प्रणाम कहिए और प्रार्थना कीजिए कि वे मुझे अखण्ड अध्यवसाय का वरदान दें। और यदि इस शरीर के लिए वह असम्भव है तो इसका शीघ्र नाश हो।—वि०

(श्रीयुत प्रमदादास मित्र महाशय को लिखित)

ईश्वरो जयति ।

मार्फत बाबू सतीशचन्द्र मुखर्जी,
गोराबाज़ार, गाजीपुर,
शुक्रवार, २४ जनवरी १८९०

पूज्यपाद,

मैं तीन दिन हुए सकुशल गाजीपुर पहुँच गया। यहाँ मैं अपने एक बालसखा बाबू सतीशचन्द्र मुखर्जी के यहाँ ठहरा हूँ। गंगा पास ही बहती है, परन्तु उसमें स्नान करना कष्टसाध्य है, क्योंकि कोई सीधा रास्ता वहाँ तक नहीं है और रेत में चलना बहुत कठिन है। मेरे मित्र के पिता बाबू ईशानचन्द्र मुखर्जी, वे महानुभाव जिनका उल्लेख मैंने आपसे किया था, यहाँ हैं। आज वे बनारस होते हुए कलकत्ता जा रहे हैं। मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं काशी आता; परन्तु अभी तक बाबाजी* के दर्शन नहीं हुए। यही मेरे यहाँ आने का अभिप्राय है। इसलिए कुछ दिनों का विलम्ब होना अनिवार्य है। यहाँ और सब तो ठीक है, सभी लोग सज्जन हैं, परन्तु उनमें बहुत अधिक पाश्चात्यपन आ गया है। खेद की बात है कि मैं पाश्चात्य भावों के प्रत्येक अन्धानुकरण का पूर्ण विरोधी हूँ। केवल मेरे मित्र ही का ही झुकाव इस ओर कम है। कैसी रद्दी

* पवहारी बाबा

सभ्यता विदेशी यहाँ लाये हैं! उन्होंने जड़वाद का कैसा मृगजल उत्पन्न किया है! विश्वनाथ इन दुर्बल हृदयों की रक्षा करें। बाबाजी से मिलने के बाद मैं आपको सविस्तार हाल लिखूँगा।

आपका,

विवेकानन्द

पुनश्च—शोक है कि भाग्य के फेर से भगवान शुक की इस जन्मभूमि में त्याग को पागलपन और पाप समझा जाता है।

ईश्वरो जयति।

गाजीपुर,

१९ फरवरी १८९०

पूज्यपाद,

मैंने गंगाधर को चिट्ठी लिखी थी कि वह अपना परिभ्रमण स्थगित कर किसी जगह ठहर जाय और तिब्बत में जिन जिन प्रकार के साधु उसे मिले हों, उनका हाल—उनके रीति-रिवाजों का, रहन-सहन का—मुझे लिख भेजें। जो उत्तर उसकी ओर से मुझे मिला वह मैं आपके पास भेज रहा हूँ। काली को हृषीकेश में बार बार ज्वर हो आता है। मैंने उसे यहाँ से एक तार भेजा है। यदि उसने मुझे बुलाया तो मुझे यहाँ से सीधे एक दो दिन में

हृषीकेश जाना होगा। मेरे इस सब मायाजाल पर आपको हँसी आती होगी, और परिस्थिति भी सचमुच ऐसी ही है। एक बन्धन लोहे की जंजीरों का होता है, दूसरा सोने की जंजीरों का। दूसरे बन्धन से बहुत कुछ कल्याण हो सकता है और इष्टसिद्धि के उपरान्त वह अपने आप खुल जाता है। मेरे गुरुदेव की सन्तान मेरी सेवा के पात्र हैं। यहीं पर मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे लिए कुछ कर्तव्य बाकी हैं। सम्भवतः काली को इलाहाबाद अथवा किसी दूसरे स्थान पर सुभीते के अनुसार भेजूँगा। आपके चरणों के सम्मुख मेरे शत शत अपराध उपस्थित हैं—'पुत्रस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'

सेवक,
विवेकानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द को लिखित)

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय

गाजीपुर,
फरवरी १८९०

प्रिय अखण्डानन्द,

तुम्हारा पत्र पाकर बहुत हर्ष हुआ। तिब्बत के सम्बन्ध में जो कुछ तुमने लिखा है वह बहुत आशाजनक है। मैं एक बार

वहाँ जाने की चेष्टा करूँगा। संस्कृत में तिब्बत को उत्तर कुरुवर्ष कहते हैं, वह म्लेच्छ भूमि नहीं है। पृथ्वी भर में सब से ऊँची भूमि होने के कारण वह बहुत शीतप्रधान है। परन्तु क्रमशः शीत सह कर वहाँ रहने का अभ्यास हो सकता है। तिब्बती लोगों के आचार-व्यवहार के बारे में तुमने कुछ नहीं लिखा। यदि वे इतने आतिथ्यशील हैं तो उन्होंने तुम्हें आगे क्यों नहीं बढ़ने दिया? सब कुछ विस्तार से लिखो। मुझे तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा थी। यह जानकर कि तुम न आ सकोगे, खेद हुआ। ऐसा लगता है कि मैं तुम्हें सब से अधिक प्यार करता हूँ। जैसे बनेगा इस माया से भी छुटकारा पाने की चेष्टा करूँगा।

तिब्बतियों के जिन तांत्रिक अनुष्ठानों के सम्बन्ध में तुमने लिखा है, उनका श्रीगणेश बौद्ध धर्म के पतन के समय में भारतवर्ष में हुआ था। मेरा विश्वास है कि जो तंत्र हम लोगों में प्रचलित हैं उनका सूत्रपात बौद्धों के द्वारा ही हुआ था। वे तांत्रिक अनुष्ठान हमारे वामाचारवाद (वाममार्ग) से भी अधिक भयंकर थे। उसमें व्यभिचार के लिए कोई रोक टोक न थी। जब बौद्ध लोग अत्यन्त व्यभिचारपरायण होकर चरित्रहीन हो गये थे तभी कुमारिल भट्ट को उन्हें यहाँ से भगाना पड़ा। जिस प्रकार कुछ संन्यासियों का श्री शंकराचार्य के सम्बन्ध में और बाउल लोगों का श्री चैतन्य के सम्बन्ध में कहना है कि वे गुप्तभोगी थे, सुरापायी तथा नाना प्रकार के जघन्य आचरणकारी थे उसी प्रकार आधुनिक तांत्रिक बौद्ध बुद्ध

देव के सम्बन्ध में कहते हैं कि वे घोर वाममार्गी थे और प्रज्ञापारमितोक्त तत्त्वगाथा जैसे सुन्दर सुन्दर उपदेशों के विकृत अर्थ लगाते हैं। इसके परिणाम स्वरूप आजकल बौद्धों के दो सम्प्रदाय हो गये हैं। ब्रह्मदेश वाले और सिंहलदेशवासी बौद्ध तंत्रों को नहीं मानते। साथ ही इन्होंने हिन्दू देवी-देवताओं को दूर कर दिया है तथा जिन 'अमिताभ बुद्ध' को उत्तराञ्चल के बौद्ध परम पूजनीय समझते हैं, उन्हें भी उन्होंने हटा दिया है। सारांश यह कि अमिताभ बुद्ध और दूसरे देवता जिनकी उत्तराञ्चल में पूजा-अर्चा होती है, उनका उल्लेख तक प्रज्ञापारमिता जैसी पुस्तकों में नहीं है किन्तु उसी में बहुतसी देवी-देवताओं के पूजन का विधान है। दक्षिणियों ने तो जानबूझकर शास्त्रों का उल्लंघन कर डाला है और देवी-देवताओं को निकाल बाहर किया है। बौद्ध धर्म का वह भाव जिसका अर्थ है Everything for others (सर्वस्व परोपकार के लिए) और जिसका युग तिब्बत भर में प्रचार पाते हो, वह आजकल यूरोप के लिए एक बड़ी आकर्षक वस्तु है। इस भाव के सम्बन्ध में मुझे बहुत कुछ कहना है पर इस पत्र में कहाँ तक लिखूँ? जिस धर्म का द्वार उपनिषदों में केवल एक जातिविशेष के प्रवेश के लिए था उसे गौतम बुद्ध ने सबके लिए खोल दिया। उनके निर्वाण के सिद्धान्त ने उनको क्या महत्व दिया? उनका बड़प्पन तो उनकी अतुलनीय सहानुभूति में है। समाधि जैसे बौद्ध धर्म के वे अंग जिनके कारण बौद्ध धर्म को महत्ता प्राप्त है,

प्रायः सब के सब वेदों में पाये जाते हैं। वहाँ यदि कुछ नहीं है तो वह है बुद्ध देव की बुद्धि तथा उनका हृदय जिनकी बराबरी संसार के इतिहास में आजतक कोई नहीं कर सका।

वेदों में जो कर्मवाद है वही यहूदी तथा अन्य धर्मों में भी है अर्थात् यज्ञ तथा अन्य बाह्य आचरणों द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि। इसका विरोध सबसे पहले भगवान बुद्ध ने ही किया। परन्तु उनके मूल भाव पुरातन जैसे थे। उदाहरणार्थ उनका अन्तःकर्मवाद तथा वेदों को छोड़ सूत्रों (सुत्त) पर विश्वास करने की आज्ञा देखो। जातिभेद वही पुराना था (बुद्ध के समय में जातियों का पूर्ण लोप नहीं हो पाया था) किन्तु उसका निश्चय व्यक्तिगत गुणों के आधार पर होता था और जो उनके धर्म पर विश्वास नहीं करते थे वे पाखण्डी कहलाते थे। ('पाखण्ड' बौद्धों का एक पुराना शब्द है, परन्तु वे बड़े भले और सहिष्णु थे; उन्होंने कभी अविश्वासियों पर तलवार नहीं उठाई।) तुमने तर्कों की आँधी में वेदों को उड़ा दिया, किन्तु तुम्हारे धर्म का प्रमाण क्या? बस विश्वास करो!!—यही तरीका तो सब धर्मों का है। यह उस समय की एक बड़ी आवश्यकता थी और इसी कारण उनका अवतार हुआ था। उनका मायावाद कपिल के जैसा है। परन्तु श्री शंकराचार्य का सिद्धान्त कितना विशाल और कितना बुद्धिसंमत था। बुद्ध और कपिल सदा से यही कहते आये हैं "इस जगत् में केवल दुःख ही दुःख है—इससे दूर रहने की चेष्टा करो, बचो।" सुख क्या यहाँ बिलकुल नहीं है? यह कथन ब्राह्मों के जैसा है, जिनके मत से

इस जगत् में सब सुख ही सुख हैं। दुःख है तो, पर इसका इलाज क्या? शायद कोई यह कहे कि दुःख भोगने का निरंतर अभ्यास हो जाने पर वह सुख जैसा लगेगा। श्री शंकराचार्य का मत इससे भिन्न है। उनका कहना है कि यह संसार है और नहीं भी। अनेक रूप होने पर भी एक है। मैं इसका रहस्योद्घाटन करूँगा। मैं इसका पता लगाऊँगा कि वहाँ दुःख है कि कुछ और। मैं उसे हौआ समझकर क्यों भागूँ? मैं इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करूँगा। इसके जानने में जो अनन्त दुःख है उसका मैं पूर्णतया आलिंगन कर रहा हूँ। क्या मैं पशु हूँ जिसे तुम इन्द्रियजनित सुख-दुःख, जरा-मरण आदि से भयभीत करना चाहते हो? मैं इसे जानूँगा, इसके जानने के लिए जान दूँगा। इस जगत् में जानने योग्य कुछ भी नहीं है। अतएव यदि इस मायिक जगत् के परे कुछ है—जिसे भगवान बुद्ध प्रज्ञापारम् अथवा अतीतात्मक कहते हैं—उसका अस्तित्व हो तो मुझे वही चाहिए। मुझे इस बात की परवाह नहीं कि उसकी प्राप्ति पर मुझे दुःख होगा या सुख। क्या ही उच्च भावना है यह! कितनी महान्! उपनिषदों के ऊपर बौद्ध धर्म पनपा है और उसके भी ऊपर है श्री शंकराचार्य का दर्शन। यदि उसमें कोई कमी है तो वह यह कि शंकराचार्य के बुद्ध के समान अद्भुत हृदय नहीं था। केवल शुष्क ज्ञानवाद था। तंत्रों के भय से, लोकभय से एक फोड़े को अच्छा करने के प्रयत्न में पूरा हाथ ही काट डाला। कोई चाहे तो इन बातों पर एक बड़ा ग्रन्थ लिख सकता है, पर मुझे न तो इतना ज्ञान है, न अवकाश ही।

भगवान् बुद्ध मेरे ईश्वर हैं। उनका कोई ईश्वरवाद नहीं, वे स्वयं ईश्वर थे। इस पर मेरा पूर्ण विश्वास है। किन्तु परमात्मा की अनन्त महिमा को सीमाबद्ध करने की किसी में शक्ति नहीं। ईश्वर में भी यह शक्ति नहीं कि वह अपने को सीमित कर सके। 'सुत्तनिपात' से गन्दार-सुत्त का जो अनुवाद तुमने किया है वह सुन्दर है। उस ग्रन्थ में एक दूसरा 'धनीसुत्त' नामक सुत्त है जिसमें इसी प्रकार के भाव हैं। धम्मपद में भी इन्हीं भावों से ओतप्रोत बहुत से वाक्यसमूह हैं। परन्तु वह तो पूर्ण ज्ञान और आत्मानुभूति से सन्तुष्ट होने पर जो परिपक्वावस्था होती है उसकी बात है—वह अवस्था जो सभी परिस्थितियों में अक्षुण्ण रहती है और जिसमें इन्द्रियों पर प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है—"ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः"। जिसमें शरीर-बोध बिल्कुल नहीं है वह मदमत्त हाथी की तरह इतस्ततः विचरण करता है। परन्तु मेरे समान क्षुद्र जीव के लिए यह आवश्यक है कि वह एक स्थान पर बैठकर साधना करे और तब तक अभ्यास में लगा रहे जब तक उसे इष्टसिद्धि प्राप्त न हो। और फिर वह चाहे तो उस प्रकार निर्द्वन्द्व विचरण कर सकता है। परन्तु वह अवस्था बहुत दूर—निःसन्देह बहुत दूर है।

> चिन्ताशून्यमदैन्यभैक्ष्यमशनं पानं सरिद्वारिषु
> स्वातन्त्र्येण निरंकुशा स्थितिरभीर्निद्रा श्मशाने वने।
> वस्त्रं क्षालनशोषणादिरहितं दिग्वास्तु शय्या मही
> संचारो निगमान्तवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि॥

विमानमालम्ब्य शरीरमेतद्-
भुनक्त्यशेषान् विषयानुपस्थितान् ।
परेच्छया बालवदात्मवेत्ता
योऽव्यक्तलिंगोऽननुषक्तबाह्यः ॥
दिगम्बरो वापि च साम्बरो वा
त्वगम्बरो वापि चिदम्बरस्थः ।
उन्मत्तवद्वापि च बालवद्वा
पिशाचवद्वापि चरत्यवन्याम् ॥ *

ब्रह्मज्ञानी को भोजन बिना किसी परिश्रम के अपने आप मिल जाता है। वह जहाँ पाता है पानी पी लेता है। वह स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण करता है—वह निर्भय है, कभी जंगल में और कभी श्मशान में सो जाता है और जिस मार्ग पर जाने से वेद भी शेष हो जाते हैं वहाँ वह संचरण करता है। वह बालकों की तरह दूसरों की इच्छानुसार परिचालित होता है, कभी नंगा कभी वस्त्रालंकारमण्डित रहता है, और कभी कभी तो उसका आच्छादान ज्ञान मात्र रहता है, कभी अबोध बालक की भाँति, कभी उन्मत्त के समान और कभी पिशाचवत् व्यवहार करता है।

मैं श्री गुरुदेव के पवित्र चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि तुमको वह दशा प्राप्त हो और तुम गैण्डे की भाँति निर्द्वन्द्व विचरण करो।

तुम्हारा प्रिय,

विवेकानन्द

---

* विवेकचूड़ामणि

(स्वामी अखण्डानन्द को)

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय

गाज़ीपुर,

मार्च १८९०

प्रिय अखण्डानन्द,

कल तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं इस समय यहाँ के अद्‌भुत योगी और भक्त पवहारी जी के पास ठहरा हूँ। वे अपने कमरे से कभी बाहर नहीं आते। दरवाजे के भीतर से ही बातचीत करते हैं। कमरे के अन्दर एक गर्त में वे रहते हैं। कहा जाता है कि वे महीनों समाधिस्थ रहते हैं। उनमें अद्‌भुत तितिक्षा है। अपना बंग देश भक्ति और ज्ञानप्रधान है; वहाँ योग की कभी चर्चा तक नहीं होती। जो कुछ है वह केवल विचित्र श्वास-साधन इत्यादि का हठयोग है, वह तो केवल एक प्रकार का व्यायाम है। इसीलिए मैं इस अद्‌भुत राजयोगी के पास ठहरा हूँ। इन्होंने कुछ आशा भी दिलाई है। यहाँ एक सज्जन हैं जिनके छोटे बगीचे में एक सुन्दर बंगला है। मैं वहाँ ठहरना चाहता हूँ। वह बगीचा बाबाजी के निवासस्थान से निकट है। वहाँ बाबाजी का एक भाई रहकर साधुओं की सेवा करता रहता है। मैं यहीं भिक्षा लिया करूँगा। अतएव यह लीला अन्त तक देखने के लिए मैंने पहाड़ों पर जाने का अपना इरादा अभी स्थगित कर दिया है। दो महीने से मुझे

कमर में पीड़ा हो रही है जिसके कारण पहाड़ों पर चढ़ना असम्भव होगा। देखें, बाबाजी से क्या मिलता है।

मेरा मूलमंत्र है कि जहाँ जो कुछ अच्छा मिले सीखना चाहिए। इसके कारण मेरे बहुत से गुरुभाई सोचते हैं कि मेरी गुरु-भक्ति में व्यवधान पड़ जायगा। इन्हें मैं पागलों तथा कट्टरपंथियों (Fanatics) के विचार समझता हूँ, क्योंकि जितने गुरु हैं वे सब एक उसी जगद्गुरु के अंश तथा आभासस्वरूप हैं। यदि तुम गाज़ीपुर आओ तो गोराबाजार में सतीश बाबू या गगन बाबू से मेरा ठिकाना पूछ लो। अथवा पवहारी बाबा को तो यहाँ का बच्चा बच्चा जानता है। उनके आश्रम पर जाकर पूछ लेना कि परमहंस कहाँ रहते हैं। लोग तुम्हें मेरा स्थान बता देंगे। मुगलसराय के पास दिलदारनगर नामक एक स्टेशन है जहाँ से तुमको एक ब्रांच रेलवे द्वारा तारीघाट तक जाना होगा। तारीघाट से गंगा पार करके तुम गाज़ीपुर पहुँचोगे। अभी तो मैं कुछ दिन गाज़ीपुर ठहरूँगा और देखता हूँ बाबाजी क्या करते हैं। यदि तुम्हारा आना हुआ तो हम दोनों साथ साथ बंगले में कुछ दिन रहेंगे और फिर पहाड़ों पर या किसी दूसरी जगह जहाँ इरादा होगा चलेंगे। कृपा कर वराहनगर में किसी को इस बात की सूचना न देना कि मैं गाजीपुर में ठहरा हूँ। साशीर्वाद,

तुम्हारा,

विवेकानन्द

ईश्वरो जयति।

गाज़ीपुर,
३ मार्च १८९०

पूज्यपाद,

आपका कृपापत्र अभी मिला। शायद आप नहीं जानते कि मैं कठोर वेदान्ती विचारों का होता हुआ भी बहुत ही कोमल-हृदय हूँ, और इसी में मेरा सर्वनाश होता है। थोड़ा भी आघात मुझे विचलित कर देता है, क्योंकि मैं कितना ही स्वार्थपरायण रहने का प्रयत्न करूँ, पर दूसरे की लाभ-हानि देखते ही मेरा सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। इस बार मैंने आत्मलाभार्थ दृढ़ संकल्प कर लिया था, परन्तु एक गुरुभाई की बीमारी का समाचार पाकर मुझे इलाहाबाद जाना पड़ा, और अब हृषीकेश से सूचना मिली है इस कारण मेरा मन वहीं लगा है। मैंने शरद को तार दे दिया है, परन्तु अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला। कैसी जगह है कि जहाँ से तार आने में भी इतना विलम्ब लगता है! कमर का दर्द अच्छा नहीं हो रहा है, बहुत कष्ट है। कुछ दिनों से मैं पवहारी जी के यहाँ नहीं जा रहा हूँ। पर वे कृपा कर मेरी दैनिक खोज-खबर लेते रहते हैं। अब तो मैं देखता हूँ वस्तुस्थिति बिलकुल बदल गई है। पहले मैं उनके द्वार का भिखारी था, पर अब वे ही मुझसे कुछ सीखना चाहते हैं! ऐसा लगता है कि यह सन्त अभी पूर्ण सिद्धि की अवस्था पर नहीं पहुँचे हैं, क्योंकि ये बहुत से कर्म, व्रत, आचार इत्यादि में लिप्त हैं और गुप्त भाव तो बहुत

ही अधिक है। पूर्ण समुद्र कभी वेलाबद्ध (मर्यादित) नहीं रह सकता, इसलिए अब इन साधु को व्यर्थ कष्ट देने से कोई लाभ नहीं। शीघ्र ही विदा लेकर प्रस्थान करूँगा। आपके पास न आ सकूँगा। मेरा ईश्वरदत्त कोमल स्वभाव ही मेरे नाश का कारण बन गया है। बाबाजी तो मुझे जाने देते नहीं और गगन बाबू (इन्हें शायद आप जानते होंगे, वे एक धार्मिक, साधु और सहृदय व्यक्ति हैं) मुझे छोड़ते नहीं। यदि तार के उत्तर से मेरा वहाँ जाना आवश्यक हुआ तो जाऊँगा, नहीं तो कुछ दिनों में आपके पास बनारस पहुँचूंगा। मैं आपको सहज छोड़नेवाला नहीं—आपको हृषीकेश ज़रूर ले जाऊंगा। आपका कोई बहाना न चलेगा। वहाँ किन स्वछता-विषयक कठिनाइयों का आप निर्देश करते हैं? पहाड़ पर क्या जल की कमी है या स्थान की? कलिकाल के तीर्थस्थानों और संन्यासियों को तो आप जानते ही हैं, वे कैसे हैं? रुपये खर्च कीजिए और मन्दिर के पुजारी आपके लिए जगह करने के निमित्त देवमूर्ति को भी हटा देंगे! इसलिए रुपया रहते हुए ठहरने की जगह की कोई चिन्ता न कीजिए। वहाँ आपको कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। गरमी तो वहाँ भी पड़ने लगी होगी, पर बनारस जैसी नहीं, इतना अच्छा है। वहाँ रातें ठंडी होने के कारण अच्छी नींद तो आयेगी।

आप इतना डरते क्यों है? मैं इस बात का ज़िम्मा लेता हूँ कि आप सकुशल घर लौटेंगे और आपको कहीं कुछ कष्ट न होगा। ब्रिटिश राज में फकीर या गृहस्थ को कोई कष्ट नहीं यह मेरा अनुभव है।

यह मेरी धारणा है कि हमारा आपका पूर्वजन्म का कुछ सम्बन्ध है। देखिए न, आपके एक पत्र से मेरे सारे संकल्प हवा हो गए और मैं सब छोड़कर बनारस की ओर उन्मुख हो गया हूँ।

गंगाधर को मैंने फिर लिखा है और उससे मठ में लौट आने की विनय की है। वह आयेगा तो आपसे मिलेगा। बनारस की जलवायु अब कैसी है? यहाँ ठहरने से मैं मलेरिया से मुक्त हो गया हूँ। केवल कमर की पीड़ा ने मुझे बेचैन कर रक्खा है। दर्द दिनरात होता रहता है और मुझे बहुत जलाता रहता है। मैं कह नहीं सकता कि मैं पहाड़ पर कैसे चढ़ूँगा। मैंने बाबाजी में अद्‍भुत तितिक्षा देखी है और इसीलिए मैं उनके कुछ प्रसाद का भिक्षुक हूँ, पर वे कुछ देना नहीं चाहते, केवल मुझसे ही ले रहे हैं। इसलिए मैं भी चला।—

आपका,

विवेकानन्द

पुनश्च—मैं अब किसी बड़े आदमी के पास न जाऊँगा।

" रे मन, तू अपने में स्थिर रह, जा न किसी के द्वार
केवल शान्तचित हो, कर विनय विवेक विचार।
परम अर्थ का जिसमें रहता सदा भरा भण्डार
वह पारस-मणि तो तुझमें है, कर उससे व्यवहार ॥"

अतएव मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि श्रीरामकृष्ण की बराबरी का दूसरा कोई नहीं। वैसी अपूर्व सिद्धि, वैसी अपूर्व अकारण दया, वैसी प्रगाढ़ सहानुभूति जन्म-मरण से जकड़े हुए जीव के लिए इस संसार में और कहाँ? या तो वे अपने कथनानुसार अवतार हैं अथवा वेदान्तदर्शन में जिसे नित्य सिद्ध महापुरुष 'लोकहिताय मुक्तोऽपि शरीरग्रहणकारी' कहा गया है, वे हैं। निश्चित! निश्चित!! इति मे मतिः। ऐसे महापुरुष की उपासना के विषय में पातञ्जल सूत्र "ईश्वरप्रणिधानाद्वा" का 'महापुरुषप्रणिधानाद्वा' के किंचित् परिवर्तित रूप में उल्लेख किया जा सकता है।

अपने जीवनकाल में उन्होंने मेरी किसी विनय को नहीं ठुकराया, मेरे लाखों अपराध क्षमा किये। मेरे माता-पिता में भी मेरे लिए इतना प्रेम न था। इसमें कोई कविजनसुलभ अतिशयोक्ति नहीं है। यह एक नितान्त सत्य है जिसे उनका प्रत्येक शिष्य जानता है। बड़े बड़े संकट और प्रलोभन के अवसरों पर मैंने करुणा के साथ रोकर विनय की है, 'भगवान्, रक्षा कर', और किसी ने भी उत्तर नहीं दिया, किन्तु इस अद्भुत महापुरुष ने अथवा अवतार या जो कुछ समझिये, उसने अपने अन्तर्यामित्व गुण से मेरी सारी वेदनाओं को जानकर, स्वयं आग्रहपूर्वक बुलाकर उन सबका निराकरण किया। यदि आत्मा अविनाशी है और यदि वे इस समय हैं तो मैं बारम्बार प्रार्थना करता हूँ, "हे अपार दया-निधे, हे ममैक शरणदाता रामकृष्ण भगवान्, कृपा करके हमारे इस

नरश्रेष्ठ बन्धुवर की सारी मनोवाञ्छा पूर्ण कीजिए। आप पर वे मंगल वर्षा करें, वे जिनको ही मैंने इस जगत् में अहेतुकी दया का एक मात्र महासागर पाया है। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

कृपया शीघ्र उत्तर दीजिए।

आपका,
विवेकानन्द

(श्रीयुत बलराम बोस महाशय को)

रामकृष्णो जयति।

गाज़ीपुर,
मार्च १८९०

पूज्यपाद,

आपका कृपापत्र कल मिला। सुरेश बाबू की बीमारी अत्यन्त कठिन है यह जानकर बहुत दुःख हुआ। यद्भावी तद्भवतु। आप भी बीमार हो गए हैं यह जानकर बहुत खेद हुआ। जब तक अहं बुद्धि है, प्रयत्न में कोई भी त्रुटि होना आलस्य, दोष एवं अपराध कहा जायगा। जिसमें वह अहंबुद्धि नहीं है उसके लिए सर्वोत्तम उपाय तितिक्षा ही है। जीवात्मा की वासभूमि इस शरीर से ही कर्म की साधना होती है। जो इसे नरककुण्ड बना देते हैं वे

अपराधी हैं और जो इस शरीर की रक्षा में प्रयत्नशील नहीं होते वे भी दोषी हैं। जैसी परिस्थिति हो उसके अनुसार निःसंकोच कार्य कीजिए।

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्
कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा ॥

"जो कुछ साध्य हो वह कीजिए। जीवनमरण की कामनाओं से रहित होकर सेवक की भाँति आज्ञा की प्रतीक्षा करते रहना ही श्रेष्ठ धर्म है।"........

भवदीय,
विवेकानन्द

(श्रीयुत प्रमदादास मित्र महाशय को)

ईश्वरो जयति।

५७, रामकान्त बसु स्ट्रीट,
बागबाजार, कलकत्ता,
२६ मई १८९०

पूज्यपाद,

बहुतसी विपद घटनाओं के आवर्त एवं मन के आन्दोलन के मध्य में पड़ा हुआ मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। विश्वनाथ के

निकट प्रार्थना करके जो कुछ मैं लिख रहा हूँ उसकी युक्ति संगति एवं सम्भवासम्भवता की विवेचना कर कृपया मुझे उत्तर दीजिए।

(१) मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि मैं श्रीरामकृष्ण के चरणों में आत्मसमर्पण करके उनका गुलाम हो गया हूँ। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता हूँ। यदि चालीस वर्ष तक अविराम कठोर त्याग, वैराग्य और पवित्रता की कठिन साधना और तपस्या के द्वारा अलौकिक ज्ञान, भक्ति, प्रेम और विभूति-मान होकर भी उन महापुरुष ने असफलता में ही शरीर त्याग किया तो हम लोगों को और किसका भरोसा? अतएव उनकी वाणी को आप्तवाक्य मानकर हम उसपर विश्वास करते हैं।

(२) मेरे लिए उनकी आज्ञा यह थी कि उनके द्वारा स्थापित त्यागीमण्डली की मैं सेवा करूँ। इस कार्य में मुझे निरन्तर लगा रहना होगा, चाहे जो हो, स्वर्ग, नरक, मुक्ति या और कुछ, सब मुझे स्वीकार होगा।

(३) उनका आदेश यह था कि उनकी सब त्यागी भक्त मण्डली एकत्रित हो और उसका भार मुझे सौंपा गया था। निःसन्देह यदि हममें से कोई यहाँ वहाँ की यात्रा करे तो उससे कोई हानि नहीं, परन्तु वह यात्रा मात्र होगी। उनका विश्वास था कि जिसे पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो गई है उसीका यहाँ वहाँ घूमना शोभा देता है। जबतक सिद्धि प्राप्त न हो, एक जगह बैठकर साधना करनी

चाहिए। जिस समय देहादि के भाव अपने आप छूट जायँ उस समय साधक चाहे जो कुछ कर सकता है। नहीं तो इधर उधर घूमते रहना साधक के पक्ष में अनिष्टकारी है।

(४) अतएव उक्त आज्ञा के अनुसार उनकी संन्यासी मण्डली वराहनगर के एक जीर्ण शीर्ण मकान में एकत्रित हुई है और सुरेशचन्द्र मित्र एवं बलराम बोस नामक उनके दो गृहस्थ शिष्यों ने इस मण्डली के भोजन और किराये आदि का जिम्मा ले लिया है।

(५) कुछ कारणों से भगवान् श्रीरामकृष्ण के शरीर को अग्नि समर्पण करना पड़ा। निःसन्देह यह कार्य बहुत गर्हित था। अस्थि-संचय के उपरान्त उनकी राख सुरक्षित रक्खी है। यदि कहीं गंगा के किनारे उसे उचित रीति से प्रतिष्ठित किया जा सके तो मेरे विचार से उस पाप का प्रायश्चित्त किंचित् अंश में हो जायगा। उक्त पवित्र अस्थियाँ, उनकी गद्दी और उनके चित्र की प्रति दिन पूजा नियमा-नुसार हमारे मठ में होती है और हमारे एक ब्राह्मण कुलोद्भव गुरुभाई उक्त कार्य में दिनरात लगे रहते हैं। इस पूजा का खर्च भी उपर्युक्त दोनों महात्मा बरदाश्त करते हैं।

(६) कितने बड़े खेद की बात है कि जिस महापुरुष के जन्म से हमारी बंग जाति एवं बंग भूमि पवित्र हुई है, जिसका जन्म इस पृथ्वी पर भारतवासियों को पाश्चिमी सभ्यता की चमक-

दमक से सुरक्षित रखने के लिए हुआ और इसलिए जिसने अपनी त्यागी मण्डली में अधिकांश विश्वविद्यालय के छात्रों को लिया, उसका उस बंग देश में, उसकी साधना-भूमि के संनिकट कोई स्मरणचिन्ह स्थापित न हो सका।

(७) उपर्युक्त दो सज्जनों की यह प्रबल इच्छा थी कि गंगा किनारे थोड़ीसी जमीन खरीदकर वहाँ पवित्र अस्थियों को समाविस्थ करें और शिष्य मण्डली वहीं एकसाथ रहे। इसके लिए सुरेश बाबू ने एक हजार रुपये की रकम दे दी थी और आगे अधिक देने का वचन दिया था, परन्तु ईश्वर के किसी गूढ़ अभिप्राय से उन्होंने कल इस लोक का त्याग कर दिया। बलराम बाबू की मृत्यु का हाल आप पहले से ही जानते हैं।

(८) अभी यह अनिश्चित है कि इस समय श्रीरामकृष्ण की शिष्य मण्डली उस पवित्र भस्मावशेष व गद्दी को लेकर कहाँ जाय। (और बंग देश के निवासियों का हाल तो आपको मालूम ही है। लम्बी लम्बी बातों में कितने आगे, परन्तु क्रियाशीलता में कितने पीछे रहते हैं।) शिष्य लोग सब संन्यासी हैं और जहाँ कहीं उन्हें ठौर मिले, जानेको तैयार हैं। पर मैं उनका सेवक इस दुःख का अनुभव कर रहा हूँ और मेरा हृदय इस विचार से चूर चूर हो जाता है कि भगवान् श्रीरामकृष्ण की अस्थियों की प्रतिष्ठा के लिए थोड़ी सी भी जमीन गंगाकिनारे न मिल सकी।

(९) एक हजार रुपये से जमीन खरीद कर कलकत्ते के निकट मन्दिर बनवाना असम्भव है। इसमें कम से कम पाँच सात हजार रुपये लगेंगे।

(१०) श्रीरामकृष्ण के शिष्यों के मित्र और आश्रय अब केवल आप ही हैं। संयुक्त प्रान्त में जितना बड़ा आपका नाम है उतना ही बड़ा आपका पद और आपका मित्रमण्डल है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस विषय पर विचार करके यदि आपकी इच्छा हो तो उस प्रान्त के धर्मशील धनी मित्रों से चंदा इकट्ठा कर इस कार्य को कर डालें। यदि आप उचित समझते हैं कि बंगाल में ही गंगा के किनारे भगवान् श्रीरामकृष्ण की समाधि तथा उनकी शिष्य मण्डली के लिए आश्रयस्थान हो, तो मैं आपकी अनुमति से आपके पास उपस्थित हो जाऊँगा। अपने प्रभु के लिए एवं प्रभु की सन्तान के लिए द्वार द्वार भिक्षा माँगने में मुझे किंचिन्मात्र संकोच नहीं। विश्वनाथ से प्रार्थना करके कृपया इस विषय पर पूर्ण विचार कीजिये। मेरे मत से यदि ये सब सच्चे, सुशिक्षित सद्वंशजात युवा संन्यासी स्थानाभाव एवं सहायाभाव के कारण भगवान् श्रीरामकृष्ण के आदर्श भाव को प्राप्त न कर सकें तो हमारे देश का दुर्भाग्य ही है।

(११) यदि आप कहें कि "आप संन्यासी हैं, आपको ये सब वासनाएँ क्यों?"—तो मैं कहूँगा कि मैं श्रीरामकृष्ण का सेवक हूँ और उनके नाम को उनकी जन्म एवं साधना की भूमि में चिर

प्रतिष्ठित रखने के लिए और उनके शिष्यों तक को उनके आदर्श की रक्षा में सहायता पहुँचाने के लिए मैं चोरी और डकैती भी कर सकता हूँ। मैं आपको अपना आत्मीय समझकर अपने हृदय को आपके सम्मुख खोलकर रख देता हूँ। इसी कारण मैं कलकत्ता लौट आया हूँ। मैंने चलने से पहले आपसे यह कह दिया था और अब मैं सब कुछ आपकी इच्छा पर छोड़ता हूँ।

(१२) यदि आप कहें कि काशी आदि स्थान में ऐसा कार्य करने में सुविधा होगी तो मेरा तो यही निवेदन है कि श्रीरामकृष्ण के जन्म और साधना के स्थान में उनकी समाधि न बन सकना बड़ी शोचनीय बात है। बंगाल की दशा शोचनीय है। यहाँ के लोगों को इस बात की कल्पना तक नहीं कि सच्चा त्याग क्या है,—आरामतलबी और इन्द्रियपरायणता ने कहाँ तक इस जाति को खोखला कर दिया है! ईश्वर इस भूमि में त्याग एवं वैराग्य की भावना का उदय करे। यहाँ के लोगों की बात क्या कहूँ। परन्तु मेरा विश्वास है कि संयुक्त प्रान्त के लोगों में—विशेषतः धनी लोगों में इस प्रकार के सत्कार्य में बहुत उत्साह है। जो कुछ ठीक समझें, उत्तर दें।

आपका,

विवेकानन्द

(खेतड़ी निवासी पण्डित शंकरलाल को)

बम्बई,

२० सितम्बर, १८९२

प्रिय पण्डितजी महाराज,

आपका कृपापत्र मुझे यथा समय मिला। न जाने क्यों मेरी इतनी अधिक प्रशंसा हो रही है। ईसा मसीह का कहना है कि "एक ईश्वर को छोड़कर कोई भला नहीं" (None is good, save One, that is God)। बाकी लोग (सब उसके हाथ के पुतले) निमित्त मात्र हैं। उस सर्वशक्तिमान की अथवा अधिकारी पुरुषों की जय जयकार हो, न कि मुझ जैसे अनधिकारी की। यह दास पुरस्कार के सर्वथा अयोग्य है (The servant is not worthy of the hire) और विशेषतः एक फकीर तो किसी प्रकार की प्रशंसा पाने का अधिकारी ही नहीं। क्या केवल अपना कर्तव्य पालन करने वाले सेवक की आप प्रशंसा करेंगे ?

अब दूसरी बात पर आता हूँ। हिन्दू मस्तिष्क का झुकाव सदा साधारण सत्य से विशेष सत्य की ओर रहा है, न कि विशेष सत्य से साधारण सत्य की ओर। अपने समस्त दर्शनों में हम सर्वत्र किसी एक साधारण सिद्धान्त को लेकर बाल की खाल निकालने की प्रवृत्ति पाते हैं, वह सिद्धान्त कितना ही भ्रमात्मक एवं बालकोचित क्यों न हो। इन सर्वमान्य सिद्धान्तों में कहाँ तक तथ्य है इस बात

के खोजने या जानने की किसी में उत्कण्ठा नहीं। स्वतंत्र विचार का हमारे यहाँ अभाव सा रहा है। यही कारण है कि हमारे यहाँ पर्यवेक्षण (Observation) और सामान्यीकरण (Generalisation—विशेष विशेष सत्यों से एक साधारण सिद्धान्त में उपस्थित होना) प्रक्रिया के फलस्वरूप परिणामतः निर्मित होने वाले विज्ञानों की इतनी कमी है। ऐसा क्यों हुआ? इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि यहाँ के जलवायु की भयंकर गर्मी हमें क्रियाशील होने की अपेक्षा आराम से बैठकर विचार करने के लिए बाध्य करती है, और दूसरे यह कि पुरोहित-ब्राह्मण दूर देशों की यात्रा जल या थल से न करते थे। दूर देश की यात्रा जल से या थल से करने वाले यहाँ थे तो जरूर, पर वे प्रायः व्यापारी थे; अर्थात् वे लोग जिनका बुद्धिविकास पुरोहितों के अत्याचारों के कारण एवं स्वयं के धनलोभ के कारण रुद्ध हो गया था। अतः उनके पर्यवेक्षणों से मानवीय-ज्ञान का विस्तार तो न हो पाया, उलटे उसकी अवनति हो गई है, क्योंकि उनके निरीक्षण इतने दोषयुक्त थे तथा विभिन्न देशों के उनके वर्णन इतने अत्युक्तिपूर्ण और तोड़ मरोड़कर इतने विकृत बनाए गये थे कि उनके द्वारा असलियत तक पहुँचना असम्भव था।

इसलिए हम लोगों को विदेशों की यात्रा करनी चाहिए। यदि हम अपने को एक सुसंगठित राष्ट्र के रूप में देखना चाहते हैं तो हमें यह जानना चाहिए कि दूसरे देशों में किस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था चल रही है, और साथ ही हमें मुक्त हृदय से दूसरे राष्ट्रों

से विचार विनिमय करते रहना चाहिए। सब से बड़ी बात तो यह, कि हमें गरीबों पर अत्याचार करना एकदम बंद कर देना चाहिए। किस हास्यास्पद दशा को हम पहुँच गये हैं! यदि कोई भंगी हमारे पास आता है तो हम उसके स्पर्श से दूर भागते हैं। परन्तु जब उसके सिर पर एक कटोरा पानी डालकर कोई पादरी प्रार्थना के रूप में कुछ गुनगुना देता है और जब उसे पहनने को एक कोट मिल जाता है—वह कितना ही फटा पुराना क्यों न हो—तब चाहे वह किसी कट्टर से कट्टर हिन्दू के कमरे के भीतर पहुँच जाय, उसके लिए कहीं रोक टोक नहीं, ऐसा कोई नहीं जो उससे सप्रेम हाथ मिलाकर बैठने के लिए उसे कुर्सी न दे! इससे अधिक विडम्बना की बात क्या होगी? आइये, देखिये तो सही, यहाँ दक्षिण में पादरी लोग क्या गजब कर रहे हैं। ये लोग नीच जाति के लोगों को लाखों की संख्या में ईसाई बना रहे हैं। ट्रावंकोर में जहाँ पुरोहितों के अत्याचार भारतवर्ष भर में सबसे अधिक हैं, जहाँ चप्पा चप्पा जमीन के मालिक ब्राह्मण हैं और जहाँ राजघरानों की महिलाएँ तक ब्राह्मणों की उपपत्नी बनकर रहने में गौरव मानती हैं वहाँ लगभग चौथाई जन-संख्या ईसाई हो गई है! मैं उन बेचारों को क्यों दोष दूँ? हे भगवान्, मनुष्य कब दूसरे मनुष्यों से भाईचारे का बर्ताव करना सीखेंगे?

भवदीय,

विवेकानन्द

(श्रीयुत हरिदास बिहारीदास देसाई जी को)

बम्बई,

२२ मई १८९३

श्रीमान् दीवानजी साहब,

कुछ दिन हुए बम्बई पहुँच गया और थोड़े ही दिनों में यहाँ से रवाना हूँगा। आपके मित्र वणिक सज्जन जिनको आपने मेरे लिए घर की व्यवस्था की सूचना दी थी, लिखते हैं कि उनके मकान में मेहमानों के कारण, जिनमें से कुछ बीमार भी है, बिलकुल जगह नहीं। उन्हें मुझे निवास न दे सकने का बहुत दुःख है। किसी प्रकार मुझे एक अच्छी हवादार जगह मिल गयी है। खेतड़ी के महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी और मैं दोनों एकसाथ रहते हैं। उनके प्रेम और कृपाभाव के लिए आभार प्रदर्शन करने में मैं असमर्थ हूँ। वे एक ताज़िमी सरदार हैं, जिनका राजा लोग उठकर स्वागत करते हैं। तब भी वे इतने सरल हैं कि उनका सेवाभाव देखकर मैं कभी कभी लज्जित हो जाता हूँ।

प्रायः देखने में आता है कि अच्छे से अच्छे सज्जनों पर कष्ट और कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं। इसका समाधान न भी हो सके, फिर भी मुझे जीवन में ऐसा अनुभव हुआ है कि जगत् में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो मूल रूप में भली न हो। ऊपरी लहरें चाहे जैसी हों, परन्तु

वस्तुमात्र के गर्भ में अक्षय प्रेम एवं कल्याण का भण्डार है। जब तक हम उस गर्भ तक पहुँचते नहीं, तभी तक हमें कष्ट मिलता है। एक बार उस शान्तिमण्डल में प्रवेश करने पर फिर चाहे जितनी आँधी और तूफान आये, वह मकान जो सदियों की पुरानी चट्टान पर बना है, हिल नहीं सकता।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि आप जैसे निःस्वार्थी और सदाचारी सज्जन, जिनका जीवन सदैव दूसरों की भलाई में बीता है, उस दृढ़ धरातल पर पहुँच चुके हैं, जिसे भगवान् ने गीता में, 'ब्राह्मी स्थिति' कहा है। जो धक्के आपको लगे हैं वे आपको उस परम पुरुष के निकट पहुँचने में सहायक हों, जो एकमात्र इस लोक और उस लोक में प्रेम का पात्र है। यह भाव आपको समस्त भूत, भविष्यत् और वर्तमान की प्रत्येक वस्तु में परमात्मा का और परमात्मा में प्रत्येक वस्तु का अनुभव कराने में सहायक होगा। ॐ शान्तिः

भवदीय,

विवेकानन्द

(एक बंगाली महिला शिष्या को)

बम्बई,

२४ मई १८९६

माँ,—

तुम्हारा और प्रिय हरिपद का पत्र पाकर प्रसन्न हुआ। मैं जल्दी जल्दी आपके पास पत्र नहीं भेज सका इस कारण दुःख न मानिए।

मैं सदैव परमात्मा से आपकी कल्याण-कामना करता रहता हूँ। ३१ तारीख को मेरी अमेरिका यात्रा निश्चित हो चुकी है। इसीलिए मैं अब बेलगांव न जा सकूँगा। ईश्वर ने चाहा तो अमेरिका और योरप से लौटने के बाद मैं तुमसे मिलूँगा। सदा श्रीकृष्ण के चरणों में आत्म-समर्पण करती रहिए। सदा इस बात का ध्यान रखिए कि हम प्रभु के हाथ के पुतले हैं। सदा पवित्र रहो। मनसावाचाकर्मणा पवित्र रहने की चेष्टा करती रहना और यथासाध्य दूसरों की भलाई करना। जब जब अवकाश मिले, प्रत्येक दिन गीतापाठ करती रहो। तुमने अपने को 'दासी' क्यों लिखा है? 'दास' और 'दासी' वैश्य अथवा शूद्र लिखा करते हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय को 'देव' या 'देवी' लिखना चाहिए। और फिर यह जातिभेद तो आजकल के ब्राह्मण महात्माओं का किया हुआ है। कौन किसका दास है? सब हरि के दास हैं। अतएव प्रत्येक महिला को अपने पति का गोत्र नाम देना चाहिए। यह पुरानी वैदिक पद्धति है, जैसे 'मित्र' इत्यादि। अधिक क्या लिखूँ? मुझे सदैव अपना हितचिन्तक समझिए। अमेरिका जाकर वहाँ की आश्चर्यजनक बातें मैं आपको प्रायः पत्रों द्वारा लिखता रहूँगा। मैं इस समय बम्बई में हूँ और ३१ तारीख तक यहीं रहूँगा। खेतड़ी नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी मुझे यहाँतक पहुँचाने आए हैं।

साशीर्वाद—

विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

योकोहामा,

१० जुलाई १८९३,

प्रिय आलासिंगा, बालाजी, जि. जि.,
तथा अन्यान्य मेरे मद्रासी मित्रगण,

अपने कार्यकलाप की सूचना आपको बराबर न देते रहने के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। यात्रा में जीवन बहुत व्यस्त रहता है; और विशेषतः मुझे तो बहुत सा सामान-असबाब साथ में लिए लिए फिरने की आदत नहीं थी। इन सब वस्तुओं की देखभाल में ही मेरी सारी शक्ति लग रही है। यह सचमुच एक बड़े झंझट का काम है।

बम्बई से कोलम्बो पहुँचा। हमारा स्टीमर वहाँ दिन भर ठहरा रहा। इस बीच में मुझे शहर देखने का अवसर मिला। हमने शहर भर देख डाला; वहाँ की और सब वस्तुओं में भगवान् बुद्ध देव की, निर्वाण के समय की, लेटी हुई मूर्ति की याद मेरे मन में अभी तक ताजी है।

दूसरा स्टेशन पेनंग था जो मलय (मलाया) प्रायद्वीप में समुद्र के किनारे का एक छोटा सा टापू है। मलयानिवासी सब मुसलमान हैं। किसी जमाने में ये लोग मशहूर समुद्री डाकू थे और व्यापारी इनके नाम से घबराते थे। किन्तु आजकल जहाजी बेड़ों की भारी

तोपों के डर से ये लोग डकैती छोड़ कर शान्तिपूर्ण धन्धों में लग गए हैं। पेनांग से सिंगापुर जाते हुए हमें उच्च पर्वतमालाओं से युक्त सुमात्रा द्वीप दिखाई दिया। जहाज़ के कप्तान ने हमें समुद्री डाकुओं के बहुत से पुराने अड्डे दिखाये। सिंगापुर स्ट्रेट सेट्लमेण्ट्स की राजधानी है। यहाँ एक सुन्दर बाग है जिसमें ताड़ जाति के तरह तरह के पेड़ लगाये गए हैं। यहाँ पंखेनुमा पत्रों वाले ताड़ के पेड़ बहुतायत से पाये जाते हैं और रोटी-फल (ब्रेड फ्रुट, Bread Fruit) नामक पेड़ तो जहाँ देखो वहीं मिलता है। मद्रास में जिस प्रकार आम के पेड़ बहुतायत से होते हैं, उसी प्रकार यहाँ मँगो स्टीन (Mango Steen) नामक फल बहुत होता है। पर आम तो आम ही है, उसके साथ किस फल की तुलना हो सकती है? यद्यपि यह स्थान भूमध्य रेखा के बहुत निकट है, फिर भी जितने काले मद्रास के लोग होते हैं, यहाँ के लोग उसके आधे भी काले नहीं होते। सिंगापुर में एक बढ़िया अजायबघर भी है।

इसके बाद हांगकांग आता है। यहाँ चीनी लोग इतनी अधिक संख्या में हैं कि जिससे यह भ्रम हो जाता है कि हम चीन ही पहुँच गए हैं। ऐसा लगता है कि सभी कारोबार, वाणिज्य व्यवसाय आदि इन्हीं के हाथों में हैं। और हांगकांग तो वास्तव में चीन ही है। ज्योंही जहाज वहाँ लंगर डालता है कि सैकड़ों संख्या में चीनी डोंगियाँ आपको तट पर ले जाने के लिए घेर लेती हैं। दो दो पतवारें होने के कारण ये डोंगियाँ कुछ विचित्र सी लगती हैं। माझी डोंगी

पर ही सकुटुंब रहता है। पतवारों का संचालन प्रायः स्त्री ही करती है। एक पतवार दोनों हाथों से चलाती रहती है और दूसरी को पैर से। और उनमें से नब्बे फी सदी स्त्रियों के पीछे उनके बच्चे इस प्रकार बँधे रहते हैं कि वे आसानी से हाथ पैर डुला सकें। मजे की बात तो यह है कि ये नन्हे नन्हे चीनी बच्चे अपनी माताओं की पीठ पर आराम से झूलते रहते हैं और उनकी माताएँ कभी अपनी सारी शक्ति लगाकर पतवार घुमाती हैं, कभी भारी भारी बोझ हटाती हैं, या कभी बड़ी फुर्ती के साथ एक डोंगी से दूसरी डोंगी पर उछल जाती हैं। लगातार इधर से उधर आने वाली डोंगियों और अग्निबोटों की भीड़ सी लगी रहती हैं। हर समय इन चीनी बालगोपालों के शिखायुक्त मस्तकों के चूर चूर हो जाने का डर रहता है। पर उन्हें इसकी क्या परवाह ? उन्हें इन बाहर की हलचलों से कोई सरोकार नहीं, वे तो अपनी चावल की रोटी कुतर कुतर खाने में मस्त रहते हैं, जो काम—झंझटों से बौखलाई हुई माँ, उन्हें दे देती है। चीनी बच्चों को पूरा दार्शनिक ही समझिए। जिस उम्र में भारतीय बच्चे घुटनों के बल भी नहीं चल पाते, उस उम्र में वह स्थिर भाव से चुपचाप काम पर जाता है। अभाव का महत्त्व वह अच्छी तरह सीख और समझ लेता है। चीनी और भारतीयों की नितान्त दरिद्रता ने ही उनकी संस्कृतियों को निर्जीव बना रक्खा है। साधारण हिन्दू या चीनी के लिए उसका दैनिक अभाव इतना भयंकर लगता है कि उसे और कुछ सोचने की फुरसत नहीं।

हांगकांग एक बड़ा ही सुन्दर नगर है। वह पहाड़ के शिखरों और ऊँची ढालू जगहों पर बसा हुआ है। वहाँ शहर की अपेक्षा अधिक ठंड पड़ती है। पहाड़ के ऊपर एक ट्रामगाड़ी प्रायः एकदम सीधी चढ़ती है। लोहे के तारों की रस्सी से खींचकर और भाप के द्वारा वह ऊपर की ओर परिचालित होती है।

हांगकांग में हम लोग तीन दिन रहे। वहाँ से कैंटन देखने गये। यह शहर एक नदी के चढ़ाव की ओर हांगकांग से प्रायः चालीस कोस पर मिलता है। वहाँ की भीड़भाड़ और वहाँ के व्यस्त जीवन का क्या कहना? नावें तो इतनी अधिक है कि मानों उनसे नदी पट गई हो। ये नावें केवल व्यापार के ही काम नहीं आतीं बल्कि सैकड़ों ऐसी भी हैं जिनमें घर की भाँति लोग रहते हैं। और इनमें से बहुतेरी बहुत बढ़िया हैं और बड़ी बड़ी हैं। वस्तव में इन्हें पानी पर तैरते हुए घर समझिये। सच पूछो तो ये बड़े बड़े दुमंज़िले या तिमंज़िले मकानों की भाँति हैं, जिनके चारों ओर बरामदा है और बीच में रास्ते। पर यह सब कुछ पानी के ऊपर तैरता हुआ है। जिस जगह हम लोग उतरे वह चीन सरकार की ओर से विदेशियों के रहने के लिए दी गई है। हमारे चारों ओर, नदी के दोनों किनारों पर मीलों तक यह नगर बसा हुआ है—एक असंख्य-जन-समूह जिसमें निरन्तर कोलाहल, धक्कामुक्की और परस्पर स्पर्धा का ही बोलबाला दिखाई देता है। परन्तु इतनी आबादी, इतनी क्रिया-शीलता होते हुए भी मैंने इतना गंदा शहर अबतक नहीं देखा।

जिसे आप लोग भारतवर्ष में गंदगी समझते हैं, वैसी यहाँ नहीं; चीनी लोग कूड़े का एक तिनका भी ज़ाया नहीं होने देते, पर ऐसा जान पड़ता है कि इन लोगों ने कभी न नहाने की कसम खा ली हो। हर एक घर में नीचे दूकान है और छत पर लोग रहते हैं। गलियाँ इतनी सँकरी हैं कि उनमें से गुजरते हुए दोनों ओर की दूकानों को आप हाथ फैलाकर लगभग छू सकते हैं। हर दस कदम पर मांस की दूकानें मिलती हैं। ऐसी दूकानें भी हैं जिनमें कुत्ते-बिल्लियों का मांस बिकता हैं। हाँ, इस तरह का मांस वही लोग खाते हैं जो बहुत गरीब हैं।

चीनी महिलाएँ बाहर दिखाई नहीं देतीं। उनमें उत्तर भारत के ही समान परदे की प्रथा है। केवल मजदूरों की ही औरतें बाहर दिखाई पड़ती हैं। इनमें भी एकाध स्त्री ऐसी दिखाई पड़ेगी जिसके पैर बच्चे से भी छोटे हैं और वह लड़खड़ाती हुई चलती है।

मैं बहुत से चीनी मन्दिरों में गया। कैंटन में जो सब से बड़ा मन्दिर है वह प्रथम बौद्ध सम्राट और सबसे पहले बौद्ध धर्म स्वीकार करनेवाले पाँचसौ पुरुषों का स्मारक स्वरूप है। मन्दिर के बीचों-बीच बुद्ध देव की मूर्ति स्थापित है, उसके नीचे सम्राट् की और दोनों ओर शिष्यमण्डली की मूर्तियों की कतारें हैं। ये सभी लकड़ी में खूबसूरती से खोदकर बनाई गई हैं।

कैंटन से मैं फिर हांगकांग लौटा और वहाँ से जापान पहुँचा। पहला बन्दरगाह नागासाकी था। यहाँ हमारा जहाज कुछ घण्टों के

लिए ठहरा और हम लोग गाड़ी में बैठकर शहर घूमने गये। चीनियों में और इनमें कितना अन्तर है! सफाई में जापानी लोग दुनिया में किसी से कम नहीं हैं। सभी वस्तुएँ साफ सुथरी हैं। रास्ते प्राय: सब चौड़े, सीधे और बराबर पक्के हैं। प्राय: प्रत्येक शहर में पिंजड़ों की भाँति छोटे छोटे मकान हैं और उन बस्तियों के पीछे चीड़ के वृक्षों के कारण हरीभरी पहाड़ियाँ हैं। जापानी लोग ठिंगने, गोरे और विचित्र वेशभूषावाले हैं। उनकी चालढाल, हावभाव, रंगढंग सभी सुन्दर हैं। जापान सौन्दर्यभूमि है। प्राय: प्रत्येक घर के पिछवाड़े बगीचा रहता है। इन बगीचों के छोटे छोटे लतावृक्ष, हरे-भरे कुंज, छोटे छोटे जलाशय और नालियों पर बने हुए छोटे छोटे पत्थर के पुल बड़े सुहावने लगते हैं। नागासाकी से चलकर हम कोबे पहुँचे। यहाँ जहाज से उतर कर हम लोग जापान का मध्य भाग देखने के उद्देश्य से स्थलमार्ग से योकाहोमा आये। इस मध्य भाग में हमने तीन शहर देखे। महान् औद्योगिक नगर ओसाका, पूर्व राजधानी क्योटो और वर्तमान राजधानी टोकिओ। टोकिओ आकार में कलकत्ते से दुगना होगा और आबादी की लगभग दूनी होगी। बिना पासपोर्ट के कोई विदेशी इसभाग में घूमने नहीं पाता।

जान पड़ता है, जापानी लोग वर्तमान आवश्यकताओं के प्रति पूर्ण जागरूक हो गए हैं। उनकी एक अच्छी सुव्यवस्थित सेना है जिसमें यहीं के अफसर द्वारा ईजाद की हुई तोपें काम में लाई जाती हैं और जो संसार में अद्वितीय कही जाती हैं। ये लोग अपनी नौशक्ति बढाते

जा रहे हैं। मैंने एक जापानी इंजिनिअर की बनाई करीब एक मील लम्बी सुरंग देखी है।

दियासलाई के कारखाने तो देखते ही बनते हैं। जो आवश्यक चीज़ें इनको लगती हैं उन सबको अपने देश में ही बनाने की चेष्टा में ये लोग तुले हुए हैं। चीन और जपान के बीच में चलने-वाली एक जापानी स्टीमर लाइन है जिसे ये लोग कुछ ही दिनों में बम्बई और योकोहामा के बीच चलाना चाहते हैं।

यहाँ मैंने बहुत से मन्दिर देखे हैं। प्रत्येक मन्दिर में कुछ संस्कृत मंत्र प्राचीन बंग अक्षरों में लिखे हुए हैं। बहुत थोड़े पुरोहित संस्कृत जानते हैं, पर वे सब के सब बड़े बुद्धिमान हैं। अपनी उन्नति करने का आधुनिक जोश पुरोहितों तक में प्रवेश कर गया है। जापानियों के विषय में जो कुछ मेरे मन में है वह सब मैं इस छोटे से पत्र में लिखनें में असमर्थ हूँ। मेरी केवल यह इच्छा है कि प्रति वर्ष यथेष्ट संख्या में हमारे नवयुवकों को यहाँ आना चाहिए। जापानी लोगों के लिए आज भारतवर्ष सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ वस्तुओं का स्वप्नराज्य है। और तुम लोग क्या कर रहे हो? जीवन भर केवल बेकार बातें किया करते हो। आओ, इन लोगों को देखो और उसके बाद जाकर लज्जा से मुँह छिपा लो। सठियाई बुद्धिवालों, तुम्हारी तो देश से बाहर निकलते ही जाति चली जाएगी। अपनी खोपड़ी में वर्षों के अंधविश्वास का कूड़ा कर्कट भरे बैठे; सैकड़ों

वर्षों से केवल आहार के शुद्धि-अशुद्धि के झगड़े में ही अपनी शक्ति नष्ट करने वाले, सैकड़ों युगों के सामाजिक अत्याचार से जिनकी सारी मानवता निचुड़ चुकी है, भला बताओ तो सही तुम कौन हो? और तुम इस समय कर ही क्या रहे हो? मूर्खो, किताब हाथ में लिये तुम केवल समुद्र के किनारे फिर रहे हो, यूरोपियनों के मस्तिष्क से निकली हुई बातों को लेकर बेसमझे दुहरा रहे हो। तीस रुपये की क्लर्की के लिए अथवा बहुत हुआ तो एक वकील बनने के लिए जी जान से तड़प रहे हो। यही तो भारतवर्ष के नवयुवकों की सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा है। तिसपर इन विद्यार्थियों के भी झुण्ड के झुण्ड बच्चे भी पैदा हो जाते हैं जो भूख से तड़पते हुए उन्हें घेरकर 'बाबूजी, खाने को दो, खाने को दो' कहकर चिल्लाते रहते हैं। क्या समुद्र में इतना भी पानी न रहा कि तुम उसमें विश्वविद्यालय के डिप्लोमा, गाऊन और पुस्तकों के समेत डूब मरो?

आओ, मनुष्य बनो। उन पाखण्डी पुरोहितों को जो सदैव उन्नति के मार्ग में बाधक होते हैं, निकाल बाहर करो, क्योंकि उनका सुधार कभी न होगा। उनके हृदय कभी विशाल न होंगे। उनकी उत्पत्ति तो सैकड़ों वर्षों के अंधविश्वासों और अत्याचारों के फल स्वरूप हुई है। पहले इनको जड़मूल निकाल फेंको। आओ, मनुष्य बनो। अपने अन्धकूप से बाहर निकलो और बाहर दृष्टि डालो। देखो जातियाँ किस तरह आगे बढ़ रही हैं। क्या तुम्हें मनुष्य से प्रेम है? क्या तुम्हें अपने देश से प्रेम है? यदि 'हाँ'

तो आओ। हम लोग उच्चता और उन्नति के मार्ग में प्रयत्नशील हों। पीछे मुड़कर मत देखो। अत्यन्त निकट और प्रिय सम्बन्धी रोते हैं तो रोने दो, पीछे देखो ही मत। केवल आगे बढ़ते जाओ।

भारतमाता कम से कम एक हजार युवकों का बलिदान चाहती है—मस्तिष्कवाले युवकों का, पशुओं का नहीं। परमात्मा ने तुम्हारी इस निश्चेष्ट सभ्यता को तोड़ने के लिए ही अंग्रेजी राज्य को भारत में भेजा है। और मद्रासियों ने ही अंग्रेजों को भारत में पैर जमाने में सब से पहले मुख्य सहायता दी है। मद्रास ऐसे कितने निःस्वार्थी और सच्चे युवक देने के लिए तैयार है जो गरीबों के साथ सहानुभूति रखने के लिए, भूखों को अन्न देने के लिए और सर्वसाधारण में नवजागृति का प्रचार करने के लिए प्राणों की बाज़ी लगाकर प्रयत्न करने को तैयार हैं और साथ ही उन लोगों को जिन्हें तुम्हारे पूर्वजों के अत्याचारों ने पशुतुल्य बना दिया है उन्हें मानवता का पाठ पढ़ाने के लिए अग्रसर हों।

तुम्हारा,

विवेकानन्द

पुनश्च—याद रखो धीरता और दृढ़ता के साथ चुपचाप काम करना होगा। अखबारों के जरिये हल्ला मचाने से काम न होगा। यश कमाना अपना उद्देश्य नहीं है।

—वि०

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

ब्रीजी मेडोज, मेटकाफ, मासाचुसेट्स,
२० अगस्त, १८९३

प्रिय आलासिंगा,

कल तुम्हारा पत्र मिला। शायद तुमने इस बीच मेरा जापान से लिखा हुआ पत्र पाया होगा। जापान से मैं वंकुवर पहुँचा। मुझे प्रशान्त महासागर के उत्तरी हिस्से में होकर जाना पड़ा। ठण्ड बहुत थी। गरम कपड़ों के अभाव से बड़ी तकलीफ हुई। अस्तु, किसी तरह वंकुवर पहुँचकर वहाँ से कैनडा होकर शिकागो पहुँचा। यहाँ लगभग बारह दिन रहा। यहाँ प्रायः हर रोज मेला देखने जाता था। वह तो एक विराट व्यापार है! कम से कम बिना दस दिन घूमे सब मेले की सैर करना असम्भव था। वरदा राव ने जिस महिला से मेरा परिचय करा दिया था वे और उनके स्वामी शिकागो समाज के बड़े गण्यमान्य व्यक्ति हैं। उन्होंने मुझसे बहुत अच्छा बर्ताव किया। लेकिन यहाँ के लोग जो विदेशियों का सत्कार करते हैं वह केवल औरों को तमाशा दिखाने के ही लिये है; रुपये से सहायता करते समय प्रायः सभी मुँह मोड़ लेते हैं। इस साल यहाँ भारी अकाल पड़ा है--व्यापार में सभी को नुकसान हो रहा है, इसलिये मैं शिकागो बहुत दिन नहीं ठहरा। शिकागो से मैं बोस्टन आया। लल्लूभाई वहाँ तक मेरे साथ थे। उन्होंने भी मुझसे बड़ा अच्छा बर्ताव किया।

यहाँ बड़ा खर्चा होता है। तुम जानते हो कि तुमने मुझे १७० पौण्ड के नोट और ९ पौण्ड नगद दिये थे। अब १३० पौण्ड ही रह गये हैं। मेरा औसत एक पौण्ड हर रोज खर्च होता है। यहाँ एक चूरट ही का दाम हमारे यहाँ के आठ आने हैं। अमरिका वाले ऐसे धनी हैं कि वे पानी की तरह रुपया बहा देते हैं, और उन्होंने क़ानून बनाकर सब चीज़ों का दाम इतना ज्यादा रखा है कि दुनिया की और कोई जाति किसी तरह यहाँ पैर रखने नहीं पाती। साधारण कुली भी औसत में हर रोज ९-१० रुपये कमाता और इतना ही खर्च करता है। यहाँ आने के पूर्व मैं जो सोने के स्वप्न देखा करता था वे अब टूट गये हैं। अब मुझे असम्भव अवस्थाओं से लड़ाई करनी पड़ती है। सैकड़ों दफे सूझ गई है कि इस देश से चल दूँ, फिर मैने सोचा कि मैं तो अड़ियल असुर हूँ और मैंने भगवान की आज्ञा पाई है। मेरी दृष्टि से कुछ रास्ता नहीं दिखाई देता तो न सही, परन्तु उनकी आँखें तो सब कुछ देख रही हैं। चाहे मरूँ या जीऊँ, अपने उद्देश्य को नहीं छोड़ता हूँ।

मैं इस समय बोस्टन के एक गांव में एक भद्र महिला का अतिथि हूँ। मेरी इनसे एकाएक, रेलगाड़ी पर पहचान हुई थी। ये मुझे न्योता देकर अपने पास लाई हैं। यहाँ पर रहने से मुझे यह सुभीता होता है कि मेरा हर रोज एक पौण्ड के हिसाब से जो खर्चा हो रहा था वह बच जाता है; और उनको यह लाभ होता है कि वे अपने मित्रों को बुलाकर उनको भारत से आया-हुआ एक अजीब

जानवर दिखा रही हैं!! इन सब यातनाओं को सहना ही पड़ेगा। अब मुझे अनाहार, जाड़ा और मेरे अनोखे पहिनावे के लिये रास्ते के मुसाफिरों की हँसी ठट्ठा, इन सभों के साथ लड़ाई कर गुजारना पड़ता है। प्रिय वत्स, जान लेना कि कोई भी बड़ा काम बिना कठिन परिश्रम और कष्ट उठाये नहीं बना है।....

याद रखो कि यह ईसाइयों का देश है। यहाँ किसी और धर्म या मत की कुछ भी प्रतिष्ठा मानों है ही नहीं। मुझे संसार के किसी भी सम्प्रदाय की शत्रुता का डर नहीं रहता है। मैं तो यहाँ मेरी-सुत ईसा की सन्तानों के बीच वास करता हूँ। प्रभु ईसा ही मुझे सहारा देंगे। एक बात मैं देख पाता हूँ कि ये लोग मेरा हिन्दूधर्म के सम्बन्ध में उदार मत, और नजारेथ के अवतार पर प्रेम देखकर बहुत ही आकृष्ट हो रहे हैं। मैं उनसे कहा करता हूँ कि मुझे उस गालिलि के रहने वाले महापुरुष के विरुद्ध कुछ कहना ही नहीं है; सिर्फ जैसे आप लोग ईसा को मानते हैं वैसे ही साथ साथ भारतीय महापुरुषों को भी मानना चाहिये। यह बात वे आदरपूर्वक सुन रहे हैं। अबतक मेरा काम इतना ही बना है कि लोग मेरे बारे में कुछ जान गये हैं। यहाँ इसी तरह काम शुरू करना होगा। अगर मुझे रुपये पैसे की सहायता पानी हो तो मुझे देर करनी पड़ेगी। जाड़े का मौसम आ रहा है। मुझे सब किस्म के गरम कपड़े मंगाने हैं, और यहाँ वालों की अपेक्षा हमें अधिक कपड़े की जरूरत होती है।....वत्स, हिम्मत रखो। ईश्वर की इच्छा से भारत में हमसे बड़े

बड़े काम हासिल होंगे। विश्वास करो, हम ही बड़े बड़े काम करेंगे—हम गरीब लोग जिनसे लोग नफरत करते हैं, पर जिन्होंने मनुष्य का दुःख सचमुच दिल से अनुभव किया है। राजे राजवाड़ों से बड़े बड़े काम बनने की आशा बहुत ही कम है।

अभी हाल में शिकागो में एक बड़ा तमाशा हो चुका है। कपूरथला के राजा यहाँ पधारे थे, और शिकागो समाज का कुछ भाग उन्हें आसमान पर चढ़ा रहा था। मेले के हाते में राजा के साथ मेरी मुलाकात हुई थी, पर आप तो अमीर आदमी ठहरे—मुझ फकीर के साथ बातचीत क्यों करने लगे? उधर एक पागल सा, धोती पहने हुए महाराष्ट्र ब्राह्मण मेले में कागज पर कीलों के सहारे बनी हुई तस्वीरें बेच रहा था। उसने अखबारों के रिपोर्टरों से उस राजा के विरुद्ध बहुतसी बातें कह दी थीं। उसने कहा था कि यह आदमी बड़ी नीच जाति का है और ये राजा गुलाम के से स्वभाववाले और दुराचारी होते हैं, इत्यादि। और यहाँ के सत्यवादी (!) सम्पादकों ने—जिनके लिये अमरीका मशहूर है—इस आदमी की बातों को कुछ गुरुत्व देने के लिये अगले दिन के अखबारों में बड़े बड़े स्तम्भ निकाल दिये, जिसमें उन्होंने भारत से आये हुए एक ज्ञानी पुरुष का—उनका मतलब मुझसे था—वर्णन किया और मेरी प्रशंसा के पुल बाँधकर मेरे मुँह से ऐसी ऐसी बातें निकाल डालीं कि जिनको मैंने स्वप्न में भी कभी नहीं सोचा था; अन्त में उन्होंने, उस महाराष्ट्र ब्राह्मण ने इस राजा के सम्बन्ध में जो कुछ

कहा था, सब मेरे ही मुख से निकला हुआ रच दिया। और इसीसे शिकागो समाज ने तुरन्त राजा को त्याग दिया। इन सत्यवादी सम्पादकों ने मेरे द्वारा मेरे एक स्वदेशी को अच्छा धक्का पहुँचाया, इससे यह भी प्रकट होता है कि इस देश में धन या खिताबों की जगमगाहट की अपेक्षा बुद्धि की कदर अधिक है।

कल स्त्री-कैदखाने की व्यवस्थापिका मिसेस जोन्सन महोदया यहाँ पधारी थीं। यहाँ 'कैदखाना' नहीं कहते हैं, किन्तु 'सुधार-शाला' कहते हैं। मैंने अमरीका में जो जो वस्तुएँ देखी हैं उनमें से यह एक बड़ी आश्चर्यजनक वस्तु है। कैदियों से कैसा सहृदय बर्ताव किया जाता है, कैसे उनका चरित्र सुधर जाता है और वे लौटकर फिर कैसे समाज के आवश्यक अंग बनते हैं, ये सब बातें कैसी अद्भुत और सुन्दर हैं, तुम्हें बिना देखे विश्वास नहीं होगा। यह सब देखकर जब मैंने अपने देश का हाल सोचा तब मेरे प्राण बेचैन हो गये। भारतवर्ष में हम गरीबों को, साधारण लोगों को, पतितों को क्या समझते हैं? उनके लिये न कोई उपाय है, न भागने की राह, और न उन्नति के लिये कुछ मार्ग ही है। भारत के दरिद्रों का, भारत के पतितों का, भारत के पापियों का कोई सहायक बन्धु नहीं, वे जितनी ही कोशिश करें उनकी उन्नति का कोई उपाय नहीं है। वे दिन पर दिन डूब रहे हैं। राक्षस जैसा नृशंस समाज उन पर जो लगातार चोटें कर रहा है उसका अनुभव तो वे खूब कर रहे हैं, पर वे जानते नहीं कि कहाँ से वे आ रही हैं। उन्होंने भुला दिया है कि

वे भी मनुष्य हैं। फल इसका हुआ दासत्व और पशुत्व। चिन्ताशील लोग कुछ दिनों से समाज की यह दुर्दशा समझ गये हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश, वे हिन्दूधर्म के मत्थे ये दोष मढ़ रहे हैं। वे सोचते हैं कि जगतभर में श्रेष्ठ इस धर्म का नाश ही समाज की तरक्की का एकमात्र उपाय है। सुनो मित्र, प्रभु की कृपा से मुझे इसका भेद मालूम हो गया है। हिन्दूधर्म का कुछ दोष नहीं। हिन्दूधर्म तो सिखा रहा है कि संसार भर के सभी प्राणी तुम्हारी ही आत्मा के विविध रूप हैं। समाज की इस हीनावस्था के कारण केवल इस तत्व को कार्यान्वित न करना सहानुभूति का अभाव तथा हृदयहीनता ही है। प्रभु ने तुम्हारे पास बुद्धरूप में आकर तुम्हें गरीबों, दुखियों और पापियों के लिये आँसू बहाना और उनसे सहानुभूति करना सिखाया, परन्तु तुमने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। तुम्हारे पुरोहितों ने यह खतरनाक किस्सा बनाया कि भगवान भ्रान्तमत प्रचार कर असुरों को मोहित करने आये थे। सच है, पर असुर हैं हमी लोग, न कि वे जिन्होंने विश्वास किया। और जिस तरह यहूदी लोग प्रभु ईसा को इनकार कर आज सारी दुनिया में भीख मांगते और सभों से उत्पीड़ित और विताड़ित होते हुए फिर रहे हैं, उसी तरह तुम लोग भी, जो जाति चाहती है उसी के गुलाम बन रहे हो। अत्याचारियों, क्या तुम्हें मालूम नहीं कि अत्याचार और गुलामी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं?—वे दोनों एक ही हैं?

बालाजी और जि. जि. को उस दिन की बात याद होगी जब शाम को पांडचेरी में एक पण्डित से समुद्र-यात्रा के विषय पर हमारा

वादविवाद हुआ था। उसके चेहरे की विकट बनावट और उसकी 'कदापि न' (हरगिज नहीं) यह बोली मुझे सदैव याद रहेगी। इनकी अज्ञता की गहराई देखकर आश्चर्य करना पड़ता है। वे जानते नहीं कि भारतवर्ष जगत् का एक अत्यन्त छोटा हिस्सा है, और सारा जगत् इन तीस करोड़ मनुष्यों को बड़ी घृणा से देखता है। वह देखता है कि मानों ये कीड़े की तरह भारत के रमणीक क्षेत्र पर रेंग रहे हैं और एक दूसरे पर अत्याचार करने की कोशिश कर रहे हैं। समाज की यह दशा दूर करनी होगी—लेकिन धर्म को मारकर नहीं; हिन्दूधर्म के महान उपदेशों का अनुसरण कर, और उसके साथ बौद्धधर्म की—जो कि हिन्दूधर्म का स्वाभाविक परिणाम ही है—अपूर्व सहृदयता को लेकर। लाखों पुरुष और स्त्रियाँ पवित्रता के अग्निमन्त्र से दीक्षित होकर भगवान का दृढ़ विश्वासरूपी कवच पहिने दरिद्रों, पतितों और पद-दलितों पर सहानुभूति के कारण पैदा हुए सिंहविक्रम से छाती भरकर, भारत भर में घूमते फिरें—मुक्ति, सेवा, सामाजिक सुधार एवं साम्य की मंगलमयी वार्ता का घर घर में प्रचार करें।

हिन्दूधर्म की तरह और कोई भी धर्म इतनी उच्चतान से मानवात्मा की महिमा प्रचार नहीं करता है, फिर हिन्दूधर्म जिस पैशाचिकता से गरीबों और पतितों के गले घोंटता है, संसार भर में और कोई धर्म वैसा नहीं करता। भगवान ने मुझे दिखाया है कि इसमें धर्म का कुछ दोष नहीं। पर हिन्दूधर्म में शामिल कुछ

आत्माभिमानी झूठे आदमी 'पारमार्थिक' और 'व्यावहारिक' नामक मतभेद रच कर सब प्रकार के आसुरिक अत्याचारों के औजार सदैव बना रहे हैं।

हताश न होना। याद रखना कि भगवान गीता में कह रहे हैं, "तुम्हारा अधिकार कर्म में है, फल में नहीं।" कमर बाँधो; वत्स, प्रभु ने मुझे इसी काम के लिये बुलाया है। जीवन भर मैं अनेक कष्ट उठाता आया हूँ। मैंने प्राणप्रिय कुटुम्बियों को एक प्रकार अनाहार से मरते देखा है। लोगों ने मुझसे ठट्ठा और अवज्ञा की है, और कपटी कहा है (मद्रास के बहुत से लोग अब भी मुझे ऐसा समझते हैं) और ये सब वे ही लोग थे जिन पर सहानुभूति करने से मुझे यह फल मिला। वत्स, यह संसार दुःख का आगार तो है, पर यही महापुरुषों के लिये शिक्षालय स्वरूप है जिसमें सहानुभूति, सहिष्णुता और सबसे बढ़कर, उस अदम्य दृढ इच्छा-शक्ति का विकास होता है, जिसके बल से मनुष्य सारा जगत् चूर चूर हो जाने पर भी रत्ती भर हिलता नहीं। मुझे उन लोगों के लिये दुःख होता है जो मुझे कपटी समझते हैं। वे दोषी नहीं हैं। वे बालक, निरे बच्चे हैं—भले ही समाज में वे बड़े गण्यमान्य समझे जायँ। उनकी आँखें अपनी छोटी नजर की परिधि से बाहर देखती नहीं हैं। उनके नियमित कार्य केवल भोजन, पान, अर्थोपार्जन और वंशवृद्धि ही हैं! ये सब कार्य वे घड़ी की सूई की तरह नियमित रूप से करते जाते हैं। इनके सिवा उन्हें और कुछ सूझता नहीं।

अहा, कैसे सुखी हैं ये बिचारे! उनकी नींद किसी तरह टूटती ही नहीं! मनुष्यों के विषय पर उनके सुखकर सिद्धान्त कभी दुःख दारिद्र्य, और पाप की पुकार से विचलित नहीं होते—सैकड़ों सदियों के पाशविक अत्याचारों के फल स्वरूप, इस पुकार ने भारत-गगन को छा दिया है। उन्हें उन सैकड़ों युगोंवाले मानसिक, नैतिक और दैहिक अत्याचारों की बातें, जिन्होंने ईश्वर के प्रतिमारूपी मनुष्य को लादू पशु, भगवती की प्रतिमारूपिणी रमणी को सन्तान पैदा करने-वाली दासी, और जीवन को विषमय बना दिया है, कभी सपने में भी याद नहीं आतीं। परन्तु और अनेक मनुष्य हैं जो देख रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं, और मन ही मन खून के आँसू बहा रह हैं—जो सोचते हैं कि इनका इलाज है, और दिलोजान से इन्हें हटाने को तैयार हैं। स्वर्गराज्य इन्हीं लोगों से बना है। मित्रों, क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि इन महापुरुषों को अपने उच्च स्थान में रहते हुए उन घृण्य कीड़ों के ख्यालों को देखने की फ़ुरसत नहीं जो प्रतिमुहूर्त अपनी अपनी शक्तिभर विष उगलने के लिये तैयार हैं?

ऊँचे पदवालों या धनिकों का भरोसा न करना। वे तो जीवन्मृत हैं। भरोसा तुम्हीं पर है जो दरिद्र और पदमर्यादा से हीन होते हुए भी विश्वासी हो। ईश्वर का भरोसा रखो। किसी चालबाज़ी की ज़रूरत नहीं, उससे कुछ भी नहीं होता। दुखियों का दर्द समझो और ईश्वर के पास सहायता की प्रार्थना करो—सहायता ज़रूर मिलेगी। मैं बारह बरस तक दिल में यह बोझ लादे और सिर पर यह विचार लिये बहुत

से धनिकों और अमीरों के दर दर घूम चुका, उन्होंने मुझे सिर्फ कपटी समझा। दिल का खून बहाते हुए मैं आधी पृथ्वी का चक्कर लगाकर इस विदेश में सहायता माँगने आया। भला यदि मेरे स्वदेश में लोग मुझे कपटी समझते हों, तो जब अमेरीका वाले एक अज्ञात विदेशी भिक्षुक को भिक्षा माँगते देखें तो वे क्या समझेंगे। लेकिन भगवान अनंत शक्तिमान है—मैं जानता हूँ वे मुझे सहायता देंगे। मैं इस देश में भूख या जाड़े से मर सकता हूँ, परन्तु मद्रासवासी युवको! मैं गरीब, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिये इस सहानभूति और कठिन प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ। जाओ, इसी मुहूर्त में, उस पार्थसारथि के मन्दिर को, जो गोकुल के दीन दरिद्र ग्वालों के सखा थे, जो गुहक चण्डाल को गले लगाने में नहीं हिचकिचाये, जिन्होंने अपने बुद्ध अवतार में अमीरों का न्योता इनकार कर एक वारांगना का न्योता स्वीकार किया और उसे उबारा था; जाओ उसके पास जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उनके सम्मुख एक महा बलि दे दो, अपने जीवन की बलि दो उन दरिद्रों, पतितों और उत्पीड़ितों के लिये जिनके लिये भगवान युग युग में अवतार लिया करते हैं, और जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं। और अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार के लिये अर्पण करने का व्रत लो, जो दिनों दिन डूबते जा रहे हैं।

यह एक दिन का काम नहीं, और रास्ता भी भयंकर कँटीला है। परन्तु पार्थसारथि हमारे भी सारथि होने के लिये तैयार हैं—हम

यह जानते हैं। उनका नाम लेकर और उनपर अनन्त विश्वास रखकर भारत के शत शत युगों से सञ्चित, पर्वतप्रमाण, अनन्त दुःखराशि में आग लगा दो—वह जल कर राख हो ही जायगी।

तो आओ भाइयो, और साहसपूर्वक इसका सामना करो। यह व्रत गुरुतर है और हम भी क्षुद्रशक्ति हैं। तो भी हम अनन्तज्योति, भगवान के लड़के हैं। भगवान की जय हो, हम सफल अवश्य होंगे। सैकड़ों आदमी इसमें काम आयेंगे, पर सैकड़ों और उनकी जगह खड़े हो जायँगे। प्रभु की जय! सम्भव है कि मैं यहाँ विफल होकर मर जाऊँ, पर कोई और यह काम जारी रखेगा। तुम लोगों ने रोग भी जान लिया, और दवा भी। अब केवल विश्वास रखना। हम धनी या अमीर लोगों की परवाह नहीं करते, हृदयहीन मस्तिष्कमार लेखकों और उनके कठोर लेखों की भी परवाह नहीं करते। विश्वास और सहानुभूति—अग्निमय विश्वास और अग्निमय सहानुभूति चाहिये। प्रभु की जय हो। जीवन तुच्छ है, मरण भी तुच्छ है, भूख तुच्छ है और जाड़ा भी तुच्छ है। जय प्रभु! आगे बढ़ते रहो—प्रभु हमारे नायक हैं। पीछे मत देखो, कौन गिरा इसकी खबर मत लो—आगे बढ़ो, सामने चलो। भाइयो, इसी तरह हम आगे बढ़ते जायँगे—एक गिरेगा तो दूसरा वहाँपर खड़ा हो जायगा।

इस गांव से मैं कल बोस्टन को जा रहा हूँ। वहाँ एक बड़ी स्त्री-समिति में मुझे व्याख्यान देना है। यह समिति रमाबाई (ईसाई) को मदद दे रही है। बोस्टन में जाकर मुझे पहिले कुछ कपड़े

खरीदने हैं। अगर यहाँ मुझे अधिक दिन ठहरना है तो मेरी इस अनोखी पोशाक से काम नहीं चलेगा। रास्ते में मुझे देखने के लिये खासी भीड़ लग जाती है। इसलिये मुझे काले रंग का एक लम्बा कोट बनाना पड़ेगा, सिर्फ व्याख्यान देने के लिये एक गेरुआ पहिनाव और पगड़ी रखूँगा। क्या करूँ? यहाँ की महिलायें यही उपदेश देती हैं। यहाँ इन्हींकी प्रभुता है, बिना इनकी सहानुभूति के काम नहीं चलेगा। यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचने से पूर्व ही मेरी पूंजी सिर्फ ६०-७० पौण्ड की रह जायगी। इसलिये कुछ रुपया भेजने की कोशिश करना। अगर यहाँ कुछ कार्य करना हो तो यहाँ कुछ दिन ठहर जाना चाहिये। मैं भट्टाचार्य महाशय के लिये फोनाग्राफ देखने न जा सका, क्योंकि मुझे उनका पत्र यहाँ पर मिला। यदि फिर से शिकागो जाऊँ तो उसके लिये कोशिश करूँगा। मैं शिकागो जाऊँगा कि नहीं यह मुझे मालूम नहीं। मेरे वहाँ के मित्रों ने मुझसे भारत का प्रतिनिधि बनने को कहा था, और वरदा राव ने जिस महाशय से मेरा परिचय करा दिया था वे यहाँ के मेले के एक अधिकारी हैं। लेकिन उस समय मैंने इससे इनकार कर दिया, क्योंकि शिकागो में महीने भर से अधिक रहने से मेरी थोड़ी सी पूंजी खतम हो जाती।

कैनडा को छोड़कर शेष अमरीका भर में रेलगाड़ियों में अलग अलग दर्जे नहीं हैं। अतः मुझे पहले दर्जे में सैर करनी पड़ी, कारण कि इसके सिवा दूसरा कोई दर्जा ही नहीं। लेकिन मैं 'पुलमैन' नामक अत्युत्तम गाड़ियों में चढ़ने का साहस नहीं करता हूँ। इनमें आराम

खूब है—यहाँ भोजन, पान, नींद, यहाँ तक कि स्नान का भी प्रबन्ध रहता है—मानों तुम किसी होटल में हो, लेकिन इनमें खर्चा बेहद है।

यहाँ समाज के भीतर घुस कर लोगों को सिखाना बड़ा कठिन काम है। विशेष कर इस समय कोई मनुष्य शहर में नहीं है। सभी गर्मी के कारण ठंडी जगहों में चले गये हैं। जाड़े में फिर सब शहर में आयेंगे तब मैं उनसे मिल सकूँगा। इसलिये मुझे यहाँ कुछ दिन ठहरना पड़ेगा। इतने प्रयत्न के बाद मैं इतनी जल्दी इस कार्य को छोड़ना नहीं चाहता। तुमलोग जितना हो सके मेरी मदद करो, बस। और यदि तुम मदद भी न कर सको तो मैं ही आखिर तक कोशिश कर देखूँगा, और यदि मैं यहाँ रोग, जाड़े अथवा भूख से मर भी जाऊँ तो तुम इस कार्य में जी जान से लगे रहना! पवित्रता, सरलता और विश्वास चाहिये। मैं जहाँ भी रहूँ मेरे नाम पर जो कोई पत्र या रुपये आयें उनको मेरे पास भेजने के लिये मैंने कुक कम्पनी से कह दिया है। 'रोम एक ही दिन में तो बना नहीं'। यदि तुम रुपया भेज कर मुझे कम से कम छः महीने यहाँ रख सको तो आशा है कि सब किस्म का सुभीता हो जायगा। इस अरसे में मैं भी जो कुछ सुभीता सामने आ जाय उसका सहारा लेने की भरसक कोशिश करता रहूँगा। यदि मैं अपने निर्वाह के लिये कोई उपाय ढूँढ़ सकूँ तो तुम्हें तुरन्त तार दूँगा।

रा—के पिता इंग्लैण्ड गये हैं। वे घर लौटने के लिये बहुत व्याकुल हैं। उनका दिल तो खूब अच्छा है—केवल बाहरी बर्ताव ही में कुछ बनिये का सा रूखापन है। चिट्ठी पहुँचने में बीस दिन से ज्यादा लगेंगे।

पहले मैं अमेरिका में प्रयत्न करूँगा; यहाँ विफल होने पर इङ्गलैण्ड में। यदि वहाँ भी सफल न होऊँ तो भारत को लौट आऊँगा और ईश्वर के दूसरे आदेश की प्रतीक्षा करूँगा।

इस न्यू इङ्गलैण्ड में अभी इतना जाड़ा है कि हर रोज शाम सबेरे आग जलानी पड़ती है। कैनडा में जाड़ा और भी अधिक है। वहाँ पर ऐसे मामूली ऊँचे पहाड़ों पर भी मैंने बर्फ गिरते देखा जैसा कि और कहीं मेरे देखने में नहीं आया।

इस सोमवार को मैं फिर सालेम में एक बड़ी स्त्री-सभा में व्याख्यान देने को जानेवाला हूँ। उससे और भी अनेक सभा-समितियों से मेरा परिचय हो जायगा। इस तरह मैं धीरे धीरे अग्रसर हो सकूँगा। लेकिन ऐसा करने के लिये इस बड़े महंगे देश में बहुत दिन ठहरना पड़ता है। भारतवर्ष में चांदी का भाव चढ़ जाने से यहाँ के लोगों के मन में बड़ी आशङ्का हो गई है। बहुत से पुतली-घर भी बन्द हो गये हैं। इसलिये अब यहाँ से सहायता पाने की चेष्टा करना वृथा है। मुझ अब थोड़े दिन अपेक्षा करनी होगी।

अभी मैं दर्जी के पास गया था। जाड़े के कपड़ों के लिये आर्डर दे आया। उसमें ३००) या इससे भी अधिक खर्च लगेगा।

यह न समझना कि ये बहुत अच्छे कपड़े होंगे। ये मामूली ही होंगे। यहाँ की स्त्रियाँ पुरुषों के पोशाक के बारे में बहुत ही बारीक नज़र रखती हैं और इस देश में उन्हींकी प्रभुता है। पादड़ी लोग इनसे खूब रुपया कमा लेते हैं। ये हर साल रमाबाई की खूब सहायता कर रही हैं। यदि तुमलोग मुझे यहाँ रखने के लिये रुपया न भेज सको तो इस देश से लौट आने के लिये कुछ रुपया भेज देना।

यदि इस बीच में कोई अच्छा समाचार देने को होगा तो मैं लिखूँगा या तार दूँगा। 'केबल्' द्वारा तार भेजने में प्रति शब्द चार रुपये लगते हैं।

शुभाकांक्षी,
विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

शिकागो,
२ नवम्बर, १८९३

प्रिय आलासिंगा,

मुझे खेद है कि मेरी एक क्षणिक कमज़ोरी के कारण तुमको इतना कष्ट हुआ। उस समय मैं खर्चे से तंग था। उसके बाद प्रभु की प्रेरणा से मुझे बहुत से मित्र मिल गए। बोस्टन के निकट एक

गाँव में हार्वर्ड युनिवर्सिटी के ग्रीक भाषा के प्रोफेसर ड० राइट् से मेरी जानपहचान हो गई। उन्होंने मेरे प्रति बहुत सहानुभूति दिखाई और इस बात पर ज़ोर दिया कि मैं सर्वधर्मसम्मेलन में ज़रूर जाऊँ, क्योंकि उनके विचार से उसके द्वारा मेरा परिचय सम्पूर्ण अमेरिका से हो जायगा। चूँकि मेरी वहाँ किसी से जानपहचान न थी इसलिए प्रोफेसर साहब ने मेरे लिये सब बंदोबस्त करने का जिम्मा अपने ऊपर लिया और उसके बाद मैं फिर शिकागो आगया। यहाँ सर्वधर्मसम्मेलन में आये हुए पूर्वी और पश्चिमी देशों के प्रतिनिधियों के साथ एक सज्जन के मकान में मेरे ठहरने की व्यवस्था हो गई है।

जिस दिन सम्मेलन का उद्घाटन होने को था उस दिन सबेरे हम लोग आर्ट पॅलेस नामक एक भवन में एकत्रित हुए, जिसमे एक बड़ा और दूसरे छोटे छोटे हॉल सम्मेलन के अधिवेशनों के लिए अस्थायी रूप से निर्मित किये गये थे। सब जातियों के लोग वहाँ थे। भारत से ब्राह्म समाज के प्रतिनिधि मजूमदार महाशय थे। बम्बई से नगरकर आये थे। जैन धर्म के प्रतिनिधि वीरचंद गांधी थे और थिआसफी के प्रतिनिधि श्रीमती एनी बेसेन्ट तथा चक्रवर्ती थे। इन सब में मजूमदार मेरे पुराने मित्र थे और चक्रवर्ती मेरे नाम से परिचित थे। बड़े भारी जुलूस के बाद हम सब लोग मंच पर श्रेणीबद्ध बैठाए गए। कल्पना किजिए एक बड़ा भारी हॉल और उसके ऊपर एक बड़ा छज्जा, दोनों में छः सात

हजार आदमी खचाखच भरे हैं जो इस देश के चुने हुए सुसंस्कृत स्त्री-पुरुष हैं, तथा मंच पर संसार की सब जातियों के बड़े बड़े विद्वान एकत्रित हैं। और मुझे, जिसने अबतक कभी समाज में भाषण नहीं दिया, इस विराट जन समुदाय में बोलना होगा!! उसका उद्घाटन बड़े समारोह से संगीत और भाषणों द्वारा हुआ। तदुपरान्त आये हुए प्रतिनिधियों का एक एक करके परिचय दिया गया और वे सामने आते थे और कुछ थोड़ासा बोलते थे। निःसन्देह मेरा हृदय धड़क रहा था और जबान सूख रही थी। मैं इतना घबराया हुआ था कि सबेरे बोल न सका। मजूमदार की वक्तृता सुंदर रही। चक्रवर्ती की तो उससे भी सुंदर। दोनों के भाषणों में खूब करतल-ध्वनि हुई। वे अपने भाषणों की सब तैयारी करके आए थे। मैं अबोध था और बिना किसी प्रकार की तैयारी के था। किन्तु मैं देवी सरस्वती को प्रणाम करके सामने आया और डा० बरोज़ ने मेरा परिचय दिया। मैंने एक छोटासा भाषण दिया। मैंने इस प्रकार सम्बोधन किया "अमेरिका की बहनो तथा भाइयो"! इसके बाद ही दो मिनट तक ऐसी घोर करतल-ध्वनि हुई कि कान में उंगली देते न बनी। और तब मैंने आरम्भ किया। और जब अपना भाषण समाप्त कर मैं बैठा तो भावावेग से मानो अवश होगया था। दूसरे दिन सब समाचार पत्रों में छपा कि मेरी ही वक्तृता उस दिन सबसे अधिक हृदयस्पर्शी थी। मेरा नाम अमेरिका भर में फैल गया। महान् टीकाकार श्रीधर ने ठीक ही कहा है, 'मूकं करोति

वाचालं', अर्थात् जिसकी कृपा मूक को भी धाराप्रवाह वक्ता बना देती है, उस प्रभु की जय हो! उस दिन से मैं विख्यात हो गया और जिस दिन मैंने हिन्दू धर्म पर अपनी वक्तृता पढ़ी उस दिन तो हॉल में इतनी भीड़ थी जितनी पहले कभी न हुई थी। एक समाचार-पत्र का कुछ अंश उद्धृत करता हूँ—"केवल महिलाएँ ही महिलाएँ कोने कोने में, जहाँ देखो वहाँ ठसाठस भरी हुई दिखाई देती थीं। सब वक्तृताओं के समाप्त होते तक वे किसी प्रकार सहिष्णुता पूर्वक विवेकानन्द की वक्तृता की बाट जोहती खड़ी रहीं।" तुम्हारे पास यदि मैं समाचार-पत्रों की कतरनें भेजूँ तो तुम आश्चर्य में पड़ जाओगे। परन्तु तुम जानते तो हो कि मैं प्रसिद्धि से घृणा करता हूँ। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जब कभी मैं मंच पर आया तो तालियों की गूँज से मेरा स्वागत किया गया। सभी पत्रों ने मेरी प्रशंसा के पुल बाँध दिये और उनमें जो बड़े ही कट्टर थे उनको भी स्वीकार करना पड़ा कि 'यह मनुष्य अपनी सुन्दर आकृति, आकर्षक व्यक्तित्व और आश्चर्यजनक वक्तृत्व के कारण सम्मेलन में सर्वप्रधान व्यक्ति है'—इत्यादि इत्यादि।

अमेरिकनों की दया का क्या कहना! मुझे अब किसी वस्तु का अभाव नहीं। मैं सन्तुष्ट हूँ। योरप जाने के लिये आवश्यक द्रव्य मुझे यहाँ से मिल जायगा। नरसिंहाचार्य नाम का एक युवक हमारी मण्डली में शामिल हो गया है। पिछले तीन साल वह शहर में इधर उधर घूमता फिरा। जो हो, मुझे उससे प्रेम हो गया है। यदि तुम

उसे जानते हो तो उसका पूर्ववृत्तान्त लिखो। वह तुमको जानता है। जिस साल पैरिस की प्रदर्शनी हुई उस साल वह योरप गया था।

मुझे अब कुछ भी अभाव नहीं रहा। शहर के कई अच्छे अच्छे घरों में मेरा प्रवेश हो गया है। मैं सदैव किसी न किसी का अतिथि होकर रहता हूँ। जैसी जिज्ञासा इस जाति के लोगों में है वैसी अन्यत्र नहीं। प्रत्येक वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना इन्हें सदैव अभीष्ट रहता है। और इनकी स्त्रियाँ तो संसार में सबसे अधिक उन्नत हैं। सामान्यत: अमेरिकन पुरुषों की अपेक्षा अमेरिकन महिलाएँ बहुत अधिक सुसंस्कृत हैं। पुरुष तो धन कमाने के लिए आजीवन दासत्व की शृंखला में बँधे रहते हैं, परन्तु नारियाँ सदैव अपनी उन्नति के अवसरों की खोज में रहती हैं। ये लोग बड़े दयालुहृदय और स्पष्टवादी हैं। जिन्हें उपदेश देने की आदत पड़ जाती है वे यहाँ आते हैं और खेद है कि इनमें से बहुतेरे अधकचेरे निकलते हैं। अमेरिकनों में भी दोष हैं और किस जाति में दोष नहीं हैं? परन्तु यह मेरा निष्कर्ष है—एशिया ने सभ्यता की नींव डाली, योरप ने पुरुषों की उन्नति की, और अमेरिका स्त्रियों की और जनसाधारण की उन्नति कर रहा है। यह स्त्रियों और श्रमजीवियों के लिए स्वर्ग-तुल्य है। अब अमेरिका की प्रजा तथा नारियों की अपने देश की प्रजा तथा नारियों से तुलना कीजिए—भेद स्पष्ट हो जायगा। अमेरिकन लोग द्रुत गति से उदारमना होते जा रहे हैं। उनकी

तुलना उन कट्टर ईसाई मिशनरियों से न कीजिए जो आपको भारतवर्ष में दिखाई देते हैं। यहाँ भी वैसे लोग हैं, पर उनकी संख्या दिनों दिन कम होती जा रही है। और यह महान् जाति शीघ्रता से उस आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होती जा रही है, जिसका हिन्दुओं को अभिमान है।

हिन्दुओं को अपना धर्म छोड़ने की आवश्यकता नहीं। उन्हें चाहिए कि धर्म-व्यवहार को एक उचित मर्यादा के भीतर सीमित रखें और समाज को उन्नतिशील होने के लिए स्वाधीनता दे दें। भारत के सभी समाजसुधारकों ने पुरोहितों के अत्याचारों और अवनति का उत्तरदायित्व धर्म के मत्थे मढ़ने की एक भयंकर भूल की और एक दुर्भेद्य गढ़ को गिराने का प्रयत्न किया। नतीजा क्या हुआ? असफलता!! बुद्ध देव से लेकर राममोहन राय तक सब ने जाति-भेद को धर्म का एक अंग माना और जातिभेद के साथ ही धर्म पर भी आघात किया और असफल रहे। पुरोहितगण चाहे कुछ भी कहें, जाति-भेद केवल एक सामाजिक विधान ही है। उसका काम हो चुका, अब तो वह भारतीय वायुमण्डल में दुर्गंध फैलाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। यह तभी हटेगा जब लोगों को उनका खोया हुआ सामाजिक व्यक्तित्व पुनः प्राप्त हो जायगा। इस देश में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने को एक 'मनुष्य' समझता है। भारत में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि वह समाज का एक दास है। उन्नति का एक मात्र साधन स्वाधीनता है। उसके

अभाव में अवनति अवश्यम्भावी है। आधुनिक प्रतिस्पर्धा के युग में जातिविचार अपने आप नष्ट होता जा रहा है। उसका नाश करने के लिए किसी धर्म-विधान की आवश्यकता नहीं। उत्तर-भारत में दूकानदारी, जूतों का धन्धा और दारू बनाने का काम करने वाले ब्राह्मण देखने में आते हैं। इसका कारण?—पारस्परिक स्पर्धा। वर्तमान राज-शासन में किसी भी मनुष्य पर इच्छानुसार कोई भी व्यवसाय करने की रोक टोक नहीं। फलतः घोर प्रतियोगिता उत्पन्न हो गई। अतएव हजारों लोग नीचे पड़े रहने की अपेक्षा समाज के उच्चाति-उच्च पद के योग्य बनने और उसे पाने के प्रयत्न में हैं। मैं जाड़े भर इस देश में रहूँगा। फिर योरप जाऊँगा। प्रभु सब प्रबन्ध कर देंगे। तुम उसकी चिन्ता न करो। तुम्हारे प्रेम के लिए कृतज्ञता प्रकट करना मेरे लिए असम्भव है।

प्रति दिन मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभु मेरे साथ हैं और मैं उनके पीछे पीछे चल रहा हूँ। उनकी इच्छा पूर्ण हो........। हम लोग संसार के लिए बड़े महत्वपूर्ण कार्य करेंगे और वे सब निःस्वार्थ भाव से, नाम अथवा यश के लिए नहीं।

अपना कार्य करते करते प्राण छोड़ने हैं; 'क्यों?'—का प्रश्न करने का हमें अधिकार नहीं है ('Ours not to reason why, ours but to do and die') साहसी बनो और इस बात का विश्वास रखो कि हमारे और तुम्हारे द्वारा बड़े बड़े कार्य होने हैं। भगवान ने बडे बडे कार्य करने के लिए हमें निर्दिष्ट किया है और

हम उन्हें करेंगे। उसके लिए तैयार रहो, अर्थात् पवित्र विशुद्ध एवं निःस्वार्थ प्रेमसम्पन्न बनो। दरिद्र, दुःखी और पददलित से प्रेम करो। प्रभु तुम्हारा कल्याण करेंगे।

रामनद के राजा और अन्य बन्धुओं से प्रायः मिलते रहो और उनसे आग्रह करो कि वे भारत के साधारण लोगों के प्रति सहानुभूति रखें। उन्हें समझाओ कि वे किस प्रकार गरीबों के गलग्रह बन रहे हैं और यदि वे प्रजा की उन्नति के लिये तैयार नहीं तो वे मनुष्य कहलाने योग्य नहीं। निर्भय होओ। प्रभु तुम्हारे साथ हैं और वे भारत के करोड़ों भूखों और अशिक्षितों का उद्धार करेंगे। एक रेल्वे का कुली इस देश में तुम्हारे युवकों और राजाओं से अधिक सुशिक्षित है। जिस शिक्षा की हिन्दू ललनाएँ कल्पना तक न कर सकती होंगी, उससे कहीं अधिक शिक्षा यहाँ प्रत्येक अमेरिकन महिला को प्राप्त है। हमें वैसी शिक्षा क्यों न प्राप्त हो? अवश्य होनी चाहिए।

अपने को निर्धन मत समझो। धन का ही एक मात्र बल नहीं है। बल है तो अच्छाई और पवित्रता में। आओ, देखो, संसार में यह बात है कि नहीं?

आपका,

विवेकानन्द

पुनश्च :—का लेख एक अद्भुत चीज़ थी जो मेरे देखने में आई। वह तो एक व्यापारी के विज्ञापन की भाँति था और वह

सर्व-धर्म-सम्मेलन में पढ़े जाने के योग्य नहीं समझा गया। अतएव न.—ने उसमें से कुछ उद्धरण एक ओर के कमरे में पढ़ सुनाये और किसी ने भी उसका कुछ भी अर्थ न समझा। उनसे यह हाल न कहना। बहुतसा विचार थोड़े शब्दों में व्यक्त करना एक कला है।—के लेख में भी बहुत काटछाँट करनी पड़ी। एक हज़ार से अधिक निबंध पढ़े गये थे और इस प्रकार के व्यर्थ वाग्जाल के सुनने के लिए समय न था। सब के लिए जो आधे घण्टे का समय निश्चित था, उससे भी अधिक समय मुझे मिला था, क्योंकि सर्वप्रिय वक्ता आखिर में बोलने के लिए रखे जाते थे, ताकि श्रोतृमण्डली प्रतीक्षा में बैठी रहे। प्रभु उनका कल्याण करें; क्या गज़ब की सहानुभूति और क्या गजब का धैर्य है उनमें! वे सबेरे के दस बजे से लेकर रात के दस बजे तक स्थिर भाव से बैठ सकते हैं। बीच में केवल आधे घण्टे का अवकाश भोजन के लिए मिलता है। एक एक करके सभी प्रबंध पढ़े गये। उनमें से अधिकांश ही बहुत साधारण थे, पर लोग अपने प्रिय वक्ताओं के लिए धैर्यपूर्वक बाट जोहते रहे।

सीलोन के धर्मपाल ऐसे ही प्रिय वक्ताओं में से थे। बड़े मधुर स्वभाववाले हैं। सम्मेलन के दिनों में हममें उनमें खूब घनिष्ठता हो गई।

पूना की एक ईसाई महिला मिस सोराबजी और जैन प्रतिनिधि श्रीयुत गांधी इस देश में ठहरकर जगह जगह व्याख्यान देंगे।

आशा है वे सफल होंगे। व्याख्यान देना इस देश का बड़ा लाभकारी व्यवसाय है और प्रायः उससे खूब धन भी प्राप्त होता है। मि. इंगरसोल को प्रति व्याख्यान पाँच सौ से लेकर छः सौ डालर तक मिलते हैं। इस देश में वे बड़े प्रसिद्ध वक्ता हैं।

वि.—

(श्रीयुत हरिपद मित्र को)

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय।

द्वारा जॉर्ज डब्ल्यू. हेल,
५४१, डियरबोर्न एविन्यू, शिकागो,
२८ दिसम्बर, १८९३

प्रिय हरिपद,

यह बड़े अचम्भे की बात है कि मेरे शिकागो के व्याख्यानों का समाचार भारतीय समाचार-पत्रों में निकल चुका है; क्योंकि जो कुछ मैं करता हूँ, उसमें लोक-प्रसिद्धि से बचने का भरसक प्रयत्न जरूर करता हूँ। मुझे कई बातें यहाँ विचित्र जान पड़ती हैं। यह कहने में कुछ अत्युक्ति न होगी कि इस देश में दरिद्रता बिलकुल नहीं है। मैंने जैसी शिष्ट और शिक्षित स्त्रियाँ यहाँ देखीं वैसी और कभी कहीं नहीं देखीं! हमारे देश में सुशिक्षित पुरुष

हैं; परन्तु अमेरिका जैसी स्त्रियाँ मुश्किल से कहीं और दिखाई देंगी। यह बात सत्य है कि सच्चरित्र पुरुषों के घर में स्वयं देवियाँ वास करती हैं—'या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेषु' (चण्डी, ४–५) मैंने यहाँ हज़ारों स्त्रियाँ देखीं जिनके हृदय हिम के समान पवित्र और निर्मल हैं। अहा! वह कैसी स्वतंत्र होती हैं! सामाजिक और नागरिक कार्यों का निरीक्षण वही करती हैं। पाठशालाएँ और विश्वविद्यालय स्त्रियों से भरे हैं और हमारे देश में स्त्रियाँ निर्भीक होकर चल भी नहीं सकतीं! मैं तो इनकी अतुलनीय कृपा का पात्र हूँ। जब से मैं यहाँ आया हूँ, इन्होंने घरों में मेरा सत्कार किया। ये मुझे खिला पिला रही हैं, मेरे व्याख्यानों का प्रबन्ध करती हैं, मुझे बाजार ले जाती हैं और मेरे आराम और सुविधा के लिए सब कुछ कर रही हैं। मैं इस महान् कृतज्ञता के ऋण को थोड़ा सा भी चुकाने में सर्वथा असमर्थ रहूँगा।

क्या तुम जानते हो कि वास्तविक शाक्त या शक्ति का पुजारी कौन है? जो यह जानता है कि जगत् में सर्वव्यापक महा शक्ति ईश्वर ही है और जो स्त्रियों को इस शक्ति का स्वरूप मानता है, वह शक्ति का पुजारी है। यहाँ बहुत से मनुष्य अपनी स्त्रियों को इसी रूप में देखते हैं। महर्षि मनु ने भी कहा है कि जिन परिवारों में स्त्रियों से अच्छा व्यवहार किया जाता है और वे सुखी हैं, उन पर देवताओं का आशीर्वाद रहता है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'। यहाँ के पुरुष स्त्रियों का यथायोग्य आदर करते

हैं। इसलिए ये इतने समृद्धिशाली, इतने विद्वान, इतने स्वतंत्र और इतने तेजस्वी हैं। लेकिन क्या कारण है कि हम इतने कमीने, निरानन्द और मरे हुए हैं। इसका उत्तर स्पष्ट है।

और यहाँ कैसी पवित्र और सती स्त्रियाँ होती हैं! २५ या ३० वर्ष की आयु के पहले बहुत कम का विवाह होता है। ये बाजार, पाठशाला और विश्वविद्यालय जाती हैं, धन कमाती हैं और सब तरह का काम करती हैं। जो श्रीमान हैं, वे गरीबों की भलाई में तत्पर रहती हैं। और हम क्या कर रहे हैं? हम लोग नियमपूर्वक अपनी लड़कियों का विवाह ११ वर्ष की अवस्था में कर देते हैं, जिससे वह भ्रष्ट और दुश्चरित्र न हो जायँ। हमारे मनुजी हमें क्या आज्ञा दे गए हैं? "पुत्रियों का पुत्रों के समान सावधानी और ध्यान से पालन और शिक्षण होना चाहिये। "कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीयातियत्नतः।" जैसे ३० वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करके पुत्रों का विवाह करना चाहिये, इसी तरह माता-पिता को पुत्रियों को भी शिक्षा देनी चाहिये, और उनसे ब्रह्मचर्य व्रत धारण कराना चाहिये। परन्तु हम असल में क्या कर रहे हैं? तुम अपनी स्त्रियों की अवस्था सुधार सकते हो? तब तुम्हारे कुशल की आशा की जा सकती है, नहीं तो तुम ऐसे ही पीछे की ओर पड़े रह जाओगे।

अगर हमारे देश में कोई नीच जाति में जन्म लेता है तो वह हमेशा के लिए गया बीता समझा जाता है; उसके लिए कोई आशा

नहीं रहती। यह भी क्या कम अत्याचार है! इस देश में हर व्यक्ति के लिए सम्भावना, अवसर और आशा है। आज वह गरीब है, तो कल वह धनी विद्वान और आदर का पात्र बन सकता है। यहाँ सब गरीब की सहायता करने के लिए चिन्तित रहते हैं। भारत में यह रोना-धोना मचा है कि हम बड़े गरीब हैं, परन्तु गरीबों के सुधार के लिए कितनी दानशील सभाएँ हैं? भारत के करोड़ों गरीबों के दुःख और पीड़ा के लिए कितने लोग असल में रोते हैं? क्या हम मनुष्य हैं? हम उनकी जीविका और उन्नति के लिए क्या कर रहे हैं। हम उन्हें छूते भी नहीं और उनकी संगति से दूर भागते हैं! क्या हम मनुष्य हैं? वे हज़ारों साधु ब्राह्मण—वे भारत की नीच और दलित जनता के लिए क्या कर रहे हैं? "मत-छू" "मत-छू" एक यही वाक्य उनके मुख से निकलता है। उनके हाथों हमारा सनातन धर्म कैसा तुच्छ और भ्रष्ट हो गया है! अब हमारा धर्म किसमें रह गया है? केवल छुआ-छूत में और कहीं नहीं!

मैं इस देश में अपनी कौतूहल की अभिलाषा पूरी करने नहीं आया था, न नाम के लिए, न यश के लिए; परन्तु भारत के दरिद्रों की उन्नति करने का साधन ढूँढ़ने आया था। यदि परमात्मा मेरी सहायता करेंगे, तो धीरे-धीरे तुम्हें वह साधन मालूम हो जायँगे।

अमेरिकावासी आध्यात्मिकता में हमसे निम्नस्तर पर हैं, परन्तु इनका समाज हमसे बहुत ही उत्तम है। हम इन्हें आध्यात्मिकता

सिखाएंगे और इनके समाज के सर्वोत्तम गुणों को अपने अनुकूल बना लेंगे। साशीर्वाद,

तुम्हारा,
विवेकानन्द

(श्रीयुत डी. आर. बालाजीराव को)

(कठिन गार्हस्थ्य शोक से पीड़ित एक मद्रासी मित्र को लिखित)

१८९३

प्रिय बालाजी,

जो दारुण से दारुण दुःख मनुष्य पर पड़ सकता है, उसे सहते हुए एक यहूदी महात्मा ने सत्य ही कहा था कि "माता के गर्भ से हम नग्न आते हैं और नग्न ही जाते हैं। भगवान का नाम धन्य है।" इन वचनों में जीवन का रहस्य छिपा है। ऊपरी सतह पर चाहे लहरें उमड़ आयें और आँधी के बवंडर चलें; परन्तु उसके अन्दर, गहराई में अपरिमित शान्ति, अपरिमित आनन्द और अपरिमित एकाग्रता का स्तर है। कहा गया है "शोकातुर व्यक्ति धन्य हैं क्योंकि वे शान्ति पाएंगे"। और क्यों पाएंगे? क्योंकि जब कराल काल भेंट करने आता है और पिता की दीन पुकार और माता के विलाप की परवाह न कर हृदय को विदीर्ण कर जाता है;

जब शोक ग्लानि और नैराश्य का बोझ असह्य हो जाता है; जब मानसिक क्षितिज में असीम विपद् और निपट निराशा छोड़ कर कुछ दिखाई नहीं देता; तब अन्तश्चक्षु के पट खुल जाते हैं और अकस्मात् ज्योति के प्रकाश से मन की आँखें चौंधिया जाती हैं, स्वप्न का तिरोभाव होता है और आध्यात्मिक दृष्टि से सृष्टि का महान् रहस्य प्रत्यक्ष दिखलाई देने लगता है। उस बोझ से बहुतेरी दुर्बल नौकाएँ डूब जातीं, परन्तु प्रतिभासम्पन्न मनुष्य, जिसमें बल और साहस है, उस समय उस अनन्त, अक्षर, परम आनन्दमय ब्रह्म का स्वयम् साक्षात्कार करता है, जो ब्रह्म भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है, और जिसकी भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रीति से उपासना होती है। वे बेड़ियाँ, जो इस दुःखमय संसार की बंधन हैं, कुछ समय के लिये मानो टूट जाती हैं और वह आत्मा स्वतंत्रतापूर्वक उन्नति-पथ पर आगे बढ़ती है और धीरे धीरे परमात्मा के सिंहासन तक पहुँच जाती है, "जहाँ दुष्ट लोग सताना छोड देते हैं और थके—माँदे विश्राम पाते हैं"। भाई! दिन रात यह विनती करना न छोड़ो और हर समय यही कहा करोः—

"तुम्हारी इच्छा पूरी हो"

"हमारा धर्म प्रश्न करना नहीं, परन्तु कर्म करना और मरना है। हे प्रभो, तुम्हारा नाम धन्य है। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। भगवान्, हम जानते हैं कि हमें तुम्हारी इच्छा स्वीकार करनी पड़ेगी। भगवान्, हम जानते हैं कि जगदम्बा के हाथों से ही हम दण्ड पा रहे हैं, और मन उसे ग्रहण करने को तैयार है; पर निर्बल

शरीर को यह दण्ड असहनीय है। हे प्रेममय पिता, जिस शान्तिमय समर्पण का तुम उपदेश देते हो उसके विरुद्ध यह हृदय की वेदना सतत संघर्ष करती रहती है। हे प्रभु! तुमने अपने सब परिवार को अपनी आँखों के सामने नष्ट होते देखा और उन्हें बचाने को हाथ न उठाया। इस प्रकार अनन्त धैर्यशाली प्रभु, हमें बल दो। आओ नाथ, तुम हमारे परम गुरु हो, जिसने यह शिक्षा दी है कि सिपाही का धर्म आज्ञा पालन है, बात करना नहीं। आओ, हे पार्थ-सारथी, आओ मुझे भी एक बार यह उपदेश दे जाओ कि तुम्हारे प्रति जीवन अर्पण करना ही मनुष्य-जीवन का सार और परम धर्म है, जिसमें मैं भी पूर्वकाल की महान् आत्माओं के साथ दृढ़ और शान्त भाव से कह सकूँ 'ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु'। परमात्मा तुम्हें शान्ति प्रदान करें, यही मेरी दिन और रात प्रार्थना है।

तुम्हारा,
विवेकानन्द

(मद्रासी शिष्यों को)

५४१, डियरबोर्न ऐविन्यू, शिकागो,
२४ जनवरी, १८९४

प्रिय मित्रो,

मुझे तुम्हारे पत्र मिले। ....किडी का पत्र मिला। जाति-भेद रहेगा या जायगा इस प्रश्न से मुझे कुछ मतलब नहीं है। मेरा

विचार है कि भारत और भारत के बाहर मनुष्य-जाति में जिन उदार भावों का विकास हुआ है, उसकी शिक्षा ग़रीब से ग़रीब और नीच से नीच को दी जाय और फिर उन्हें स्वयम् विचार करने का अवसर दिया जाय। जाति-भेद रहना चाहिये या नहीं, स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिये या नहीं, मुझे इससे कोई वास्ता नहीं। स्वतंत्र विचार और कार्य ही जीवन, उन्नति और कुशल-क्षेम का एक साधन है। जहाँ स्वतंत्रता नहीं है, उस मनुष्य, जाति या राष्ट्र की अवनति निश्चय होगी।

जाति-भेद हो या न हो, लोकाचार हो या न हो, परन्तु जो मनुष्य या मनुष्य-श्रेणी, जाति, राष्ट्र या सम्प्रदाय किसी व्यक्ति के स्वतंत्र विचार या कर्म में बाधा डालता है, वह राक्षसी है और उसका नाश अवश्य होगा। परन्तु स्मरण रहे कि वह स्वतंत्रता किसी को हानि पहुँचाने वाली न होनी चाहिये।

जीवन में मेरी सर्वोच्च अभिलाषा यह है कि एक ऐसा यंत्र स्थापित हो जाय, जो कि उन्नत या श्रेष्ठ विचारों को सब के द्वार पर पहुँचा दे। फिर स्त्री-पुरुषों को अपने भाग्य का निर्णय स्वयम् करने दो। हमारे पूर्वजों ने तथा अन्य देशों ने जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर क्या विचार किया है, यह सर्वसाधारण को जानने दो। विशेषकर उन्हें यह देखने दो कि और लोग क्या कर रहे हैं। फिर उन्हें अपना निर्णय करने दो। रासायनिक द्रव्य इकट्ठे कर दो और प्रकृति के नियमानुसार वे किसी विशेष आकार को धारण कर लेंगे।....

परिश्रम करो, अटल रहो और भगवान पर श्रद्धा रखो। काम शुरू कर दो। मैं भी आगे या पीछे आजाऊँगा। "धर्म को बिना हानि पहुँचाए जनता की उन्नति" इसे अपना आदर्श वाक्य बना लो। याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ी में बसता है; परन्तु खेद है, उन लोगों के लिए कभी किसी ने कुछ नहीं किया। हमारे आधुनिक सुधारक विधवाओं का विवाह करने में लगे हुए हैं। निश्चय ही मुझे प्रत्येक सुधार से सहानुभूति है; परन्तु विधवाओं को पति मिलने पर नहीं, बल्कि जनता की अवस्था पर राष्ट्र की भावी उन्नति निर्भर है। जनता की उन्नति कर सकते हो? उनका खोया हुआ व्यक्तित्व, बिना उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक वृत्ति को नष्ट किये, वापस कर सकते हो? क्या अभिन्नता, स्वतंत्रता, कार्य-कौशल, पौरुष में तुम पश्चिमियों के भी गुरु बन सकते हो? उसी के साथ साथ धर्म-विश्वास और स्वाभाविक धार्मिक वृत्ति में हिन्दुओं की परम मर्यादा पर जमे रह सकते हो? यह हमारा काम है और हम इसे करेंगे। तुम सबने इसी के लिए जन्म लिया है। अपने में विश्वास रखो। दृढ़ विश्वास से बड़े-बड़े कर्मों की उत्पत्ति होती है। हमेशा आगे बढ़ो। मर कर भी गरीब और पद-दलितों के लिए सहानुभूति रखना, यही हमारा आदर्शवाक्य है। वीर युवको! आगे बढ़ो!

तुम्हारा शुभाकांक्षी,

विवेकानन्द

('किडी' के प्रति)

५४१ डियरबोर्न एविन्यु
शिकागो,
३ मार्च, १८९४

प्रिय किडी,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला था, परन्तु मैं निश्चय नहीं कर सका कि इसका क्या जवाब दूँ। तुम्हारा अन्तिम पत्र पाने से कुछ आश्वासन मिला।....

मैं तुमसे यहाँ तक सहमत हूँ कि विश्वास से अपूर्व अन्तर्दृष्टि मिलती है और केवल विश्वास से भी मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है, पर उससे संकीर्णता आ जाने और भविष्य उन्नति में बाधा पड़ने की आशङ्का रहती है।

ज्ञानमार्ग अच्छा है, परन्तु उसके शुष्क वादविवाद में परिणत हो जाने का डर रहता है।

भक्ति बड़ी ही उच्च वस्तु है, पर उससे निरर्थक भावुकता पैदा होने के कारण असली चीज़ ही के बिगड़ जाने की सम्भावना रहती है।

हमें इन सभों का सामंजस्य ही चाहिये। श्रीरामकृष्ण का जीवन ऐसा ही सामंजस्यपूर्ण था। ऐसे महापुरुष जगत् में बहुत ही कम आते हैं, परन्तु हम उनके जीवन और उपदेशों को आदर्श

स्वरूप सामने रखकर आगे बढ़ सकते हैं। यदि हममें से प्रत्येक व्यक्ति उस आदर्श की पूर्णता को प्राप्त न कर सके तो भी हम हर एक व्यक्ति के जीवन में एक एक भाव का इस तरह विकास कर सकते हैं जिससे उसकी एकदेशिता दूर हो जाय—जैसे सब जीवनों को मिला कर एक पूर्ण जीवन गठित हो, और एक में जिस चीज़ की कमी है वह दूसरे के जीवन से पूरी हो जाय। यदि इससे प्रत्येक के जीवन में समन्वय के भाव का प्रकाश न हुआ तो न सही, पर इससे कई एक व्यक्तियों के समष्टि जीवन में समन्वय तो हुआ। क्या यही अन्य प्रचलित धर्ममतों की अपेक्षा उन्नति करने के लिये एक अच्छा मार्ग नहीं हुआ ?

कोई भी धर्म लोगों के जीवन पर तभी असर कर सकता है जब कि वे बिलकुल उसीमें लवलीन हो जायँ। पर चेष्टा करनी होगी कि इससे किसी संकीर्ण सम्प्रदाय की सृष्टि न होने पाये। इससे बचने के लिये हम अपने को एक असाम्प्रदायिक सम्प्रदाय बनाना चाहते हैं। सम्प्रदाय से जो लाभ होते हैं वे भी उसमें मिलेंगे और साथ ही साथ सार्वभौमिक धर्म का उदार भाव भी उसमें रहेगा।

यद्यपि ईश्वर सर्वत्र है तो भी उसको हम केवल मनुष्यचरित्र के द्वारा जान सकते हैं। श्रीरामकृष्ण के जैसा पूर्ण चरित्र कभी किसी महापुरुष का नहीं हुआ, इसलिये हमें चाहिये कि हम उन्हींको केन्द्र बनाकर उन पर डटे रहें। हाँ, हर एक आदमी उनको अपने अपने ढङ्ग से ग्रहण करे, इसमें कोई रुकावट नहीं

डालनी चाहिये। चाहे कोई उन्हें ईश्वर माने, या परित्राता या आचार्य, या आदर्श पुरुष अथवा महापुरुष—जो जैसा चाहे वह उन्हें उसी ढंग से समझे।

हम न तो सामाजिक साम्यवाद का प्रचार करते हैं, न वैषम्य-वाद का। पर इतना कहते हैं कि श्रीरामकृष्ण के पास सभी का समान अधिकार है, और हम विशेष ध्यान इसीपर देते हैं कि उनके शिष्यवर्ग को, क्या विचारों में, क्या कार्य में, पूरी स्वतन्त्रता रहे। समाज अपना धन्धा आप ही सम्हाले। हम किसी भी मतावलम्बी को अलग करना नहीं चाहते। वह एकमात्र निराकार ईश्वर को ही माने या चाहे "सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" ही कहे, अद्वैतवादी हो चाहे बहु देवताओं का विश्वासी हो, अज्ञेयवादी हो चाहे नास्तिक—हम किसी को अलग करना नहीं चाहते हैं। पर यदि वह शिष्य होना चाहे तो उसे केवल इतना ही करना होगा कि वह अपना चरित्र ऐसा बनाये जो कि जैसा उदार हो वैसा ही गम्भीर भी।

चरित्र-गठन के बारे में भी हम किसी विशेष नैतिक मत को ही ग्रहण करने के लिये नहीं कहते और न खानपान के सम्बन्ध में ही सभी को एक निर्दिष्ट नियम पर चलने को कहते हैं। हाँ, हम उन कामों को करने से लोगों को मना करते हैं जिससे औरों को कुछ हानि पहुँचे।

धर्माधर्म का इतना ही लक्षण बताकर आगे हम लोगों को अपने ही विचारों पर निर्भर रहने का उपदेश देते हैं। पाप या

अधर्म वही है जो उन्नति में बाधा डालता हो, या पतन में सहायता करता हो, और धर्म वही है जिससे श्रीरामकृष्ण के तुल्य बनने में सहारा मिले।

इसके बाद कौनसा मार्ग उपयोगी है, किससे अपना लाभ होगा, यह प्रत्येक व्यक्ति स्वयं सोच और चुन ले और उसी मार्ग से चले; इस विषय में हम सभी को स्वाधीनता देते हैं। एक की शायद मांस खाने से उन्नति सहज में होगी, और दूसरे की फलमूल खाकर जीने से। जो जिसका भाव हो वह उसी राह पर चले। यदि एक व्यक्ति किसी काम को कर रहा है और दूसरा उसका अनुकरण करके अपने को हानि पहुँचाये तो इस दूसरे व्यक्ति को कुछ अधिकार नहीं है कि वह पहले को गाली दे; औरों को अपने मत पर लाने की जिद करने की बात तो दूर रही। हो सकता है कि कुछ मनुष्यों को सहधर्मिणी से उन्नति प्राप्त करने में सहायता हो, परन्तु वही दूसरों के लिये विशेष हानिकारक हो सकती है। इस कारण से अविवाहित शिष्य को कोई अधिकार नहीं कि वह विवाहित शिष्य से कहे कि तुम ग़लत राह पर चल रहे हो, उस भाई को अपने नैतिक आदर्श पर लाने की बात तो अलग रही।

हमें विश्वास है कि सभी प्राणी ब्रह्म हैं। प्रत्येक आत्मा मानो बादल से ढके हुए सूर्य के तुल्य है और एक मनुष्य से दूसरे का अन्तर केवल यही है कि कहीं सूर्य के ऊपर बादलों का घना

आवरण है और कहीं कुछ पतला। हमें विश्वास है कि यही सब धर्मों की नींव है, चाहे कोई उसे जाने या न जाने। और मनुष्य की भौतिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति के सारे इतिहास का मूलतत्त्व यही है कि आत्मा का स्वरूप कभी प्रकट और कभी गुप्त होता चला आया है।

एक ही आत्मा जुदा जुदा उपाधि या आवरण में होकर प्रकाशित होती है।

हमें विश्वास है कि यही वेद का चरम रहस्य है।

हमें विश्वास है कि हरएक मनुष्य को चाहिये कि वह दूसरे मनुष्य को इसी तरह, अर्थात् ईश्वर समझ कर, सोचे और उससे उसी तरह अर्थात् ईश्वर की दृष्टि से बर्ताव करे; उसकी किसी तरह भी घृणा या निंदा करना अथवा उसे हानि पहुँचाने की चेष्टा करना उसे बिलकुल उचित नहीं। यह केवल संन्यासी का ही नहीं, बल्कि सभी नर-नारियों का कर्तव्य है।

हमें विश्वास है कि आत्मा में लिंग या जाति का भेद नहीं है, न उसमें अपूर्णता ही है।

हमें विश्वास है कि सम्पूर्ण वेद, दर्शन, पुराण और तन्त्र में कहीं भी यह बात नहीं है कि आत्मा में लिंग या वर्ण या जाति का भेद है। इसलिये हम उन लोगों से सहमत हैं जो कहते हैं कि धर्म से समाज-सुधार का कुछ सरोकार नहीं। फिर उन्हें भी

हमारी इस बात को मानना होगा कि धर्म को भी, उसी कारण से, किसी प्रकार का सामाजिक विधान देने, या सब जीवों के बीच वैषम्यवाद का प्रचार करने का कोई अधिकार नहीं, जब कि इस कल्पित और भयानक विषमता को बिलकुल मिटा देना ही धर्म का लक्ष्य है।

अगर कोई कहे कि इस विषमता में से जाकर ही हम अन्त में समत्व और एकत्व को प्राप्त कर लेंगे तो हमारा जवाब यह है कि वही धर्म जिसका हवाला देकर वे ऊपर लिखी बातें कहते हैं, बारम्बार कहता है कि कीचड़ से कीचड़ नहीं धुल सकता।

विषमता से समता को पहुँचना कैसा है—मानो बुरे कामों के द्वारा सच्चरित्र बनना।

इसलिये सिद्धान्त यही है कि सामाजिक विधान, समाज की नाना प्रकार की दशाओं के द्वन्द्व से धर्म के अनुमोदन पर, बने हैं। धर्म ने यह भारी भूल की कि उसने सामाजिक विषयों में हाथ डाला। फिर अब वह धोखा देकर कहने लगा है कि समाज-सुधार से धर्म का क्या मतलब? ऐसा कहकर धर्म अपना खण्डन आप ही कर रहा है। हाँ, अब हमें इस बात की ज़रूरत हो रही है कि धर्म समाज-सुधार में हाथ न डाले, पर इसीलिये हम यह भी कह देते हैं कि धर्म समाज का व्यवस्थापक न बने, कम से कम वर्तमान समय में तो कदापि इसकी चेष्टा न करे।

औरों के अधिकार पर हाथ मत डालिये, अपनी सीमा के भीतर रहिये, तभी सब ठीक हो जायगा।

(१) शिक्षा का अर्थ है उस पूर्णता का विकास करना जो सब मनुष्यों में पहले ही से मौजूद है।

(२) धर्म का अर्थ है उस ब्रह्मत्व का विकास करना जो सब मनुष्यों में पहले ही से मौजूद है।

अतः दोनों स्थलों पर शिक्षक का कार्य केवल रास्ते से सब रुकावटें हटा देना ही है। जैसा मैं सर्वदा कहा करता हूँ कि औरों के अधिकारों पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए—तभी सब ठीक हो जायगा।

अर्थात् हमारा कर्तव्य है रास्ता साफ कर देना—आगे को ईश्वर ही सब कुछ करता है।

इसलिये तुम्हें यह थोड़ी सी बात विशेष कर याद रखनी चाहिये, क्योंकि मैं देखता हूँ कि तुम्हें रातदिन यह बात खटकती रहती है कि धर्म का केवल आत्मा से ही काम है, सामाजिक विषयों से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं। तुम्हें यह भी सोचना चाहिये कि जिस युक्ति के बल से तुम अब धर्म को समाज-सुधार से अलग कर रहे हो, वही युक्ति धर्म की उस अनधिकार-चर्चा पर दोष देती है जिससे धर्म पहले से ही समाज के लिये विधान बनाकर अनर्थ कर बैठा है। अब धर्म को समाज से अलग करने की चेष्टा ऐसी है कि मानो किसी आदमी ने जबरदस्ती किसी दूसरे आदमी की जमीन

छीन ली; और जब वह अपनी जमीन फेर लेने की कोशिश करने लगे तो पहला आदमी रोते हुए मनुष्यमात्र के अधिकार की पवित्रता की घोषणा करे !

पुरोहितों को समाज की प्रत्येक छोटी छोटी बात पर दस्तन्दाज़ी करने की क्या ज़रूरत थी ? इसीलिये तो लाखों आदमी अब कष्ट भोग रहे हैं।

तुमने मांस खानेवाले क्षत्रियों की बात उठाई है। क्षत्रिय लोग चाहे मांस खायँ चाहे न खायँ वे ही हिन्दूधर्म की उन सब वस्तुओं के जन्मदाता हैं जिनको तुम महत् और सुन्दर देखते हो। उपनिषद किसने लिखे थे ? राम कौन थे ? कृष्ण कौन थे ? बुद्ध कौन थे ? जैनों के तीर्थंकर कौन थे ? जब कभी क्षत्रियों ने धर्म का उपदेश दिया उन्होंने सभी को धर्म पर अधिकार दिया। और जब कभी ब्राह्मणों ने कुछ लिखा उन्होंने औरों को सब प्रकार के अधिकारों से वंचित करने की चेष्टा की। मूर्ख, गीता और व्याससूत्र पढ़ो, या किसीसे सुन लो। गीता में मुक्ति की राह पर सभी नरनारियों, सभी जातियों, और सभी वर्णों को अधिकार दिया गया है, परन्तु व्यास गरीब शूद्रों को वंचित करने के लिये वेद की मनमानी व्याख्या कर रहे हैं। क्या ईश्वर तुम जैसा मूर्ख है, क्या वह इतना नाजुक है कि एक टुकड़े मांस से उसकी दयारूपी नदी में चर खड़ा हो जाय ? अगर वह ऐसा ही है तो उसका मोल एक फूटी कौड़ी भी नहीं। खैर, यह दिल्लगी की बात जाने दो, प्यारे, तुमसे मुझे यही कहना

है कि इस पत्र में मैंने तुमको वह प्रणाली इंगित कर दी है जिससे तुम्हें अपनी चिन्ता को नियमित करना होगा।

मुझसे कुछ आशा मत करना। मैं तुमको पहले ही लिख चुका और तुमसे पहले ही कह दिया है कि मुझे दृढ़ विश्वास है कि मद्रासियों के द्वारा ही भारतवर्ष की उन्नति होगी। इसीलिये कहता हूँ कि मद्रास के रहनेवाले युवको, क्या तुममें से कुछ लोग रामकृष्ण को केन्द्र बनाकर इस नये भाव में एकदम मस्त हो सकते हैं? सामग्री इकट्ठी कर श्रीरामकृष्ण की एक छोटीसी जीवनी लिखो। सचेत रहना कि उसमें कोई सिद्धाई घुसने न पाये, अर्थात् वह जीवनी इस ढंग से लिखी जाय कि वह उनके उपदेशों का एक उदाहरण बन जाय। केवल उनकी ही बातें उसमें रहें। खबरदार मुझको या किसी और जीवित व्यक्ति को उसमें मत लाना। तुम्हारा मुख्य उद्देश होगा उनकी शिक्षाओं को जगत् में फैलाना, और वह जीवनी उन्हींकी उदाहरण होगी। उनके जीवन की अन्यान्य घटनायें साधारण लोगों के लिये नहीं हैं। मैं खुद अयोग्य होने पर भी मेरे ऊपर एक यह विशेष काम था कि जो रत्न की पेटी मुझे सौंपी गई थी मैं उसे मद्रास में लाकर तुम्हारे हाथों में दे दूँ।

जो लोग कपटी, द्वेषपूर्ण, गुलाम के से स्वभाववाले कापुरुष हैं और जिन्हें केवल जड़ वस्तुओं पर विश्वास है वे कभी कुछ नहीं कर सकते। ईर्ष्या ही हमारे जातीय चरित्र का धब्बा है, जो

गुलामों में ही पाई जाती है। औरों का तो क्या कहना, स्वयं सर्वशक्तिमान ईश्वर भी इस ईर्ष्या के कारण हमारा कुछ भला नहीं कर सकता।

मेरे बारे में समझो कि मुझे जो कुछ करना था वह सब मैं कर चुका—अब मैं मर गया; यही समझो कि सब कामों का भार तुम्हीं पर है। मद्रासवासी युवको, समझो कि तुम्हीं इस काम के लिये विधाता से भेजे हुए हो। तुम काम में लग जाओ, ईश्वर तुम्हारा भला करे।

मुझे छोड़ दो, मुझे भूल जाओ, केवल श्रीरामकृष्ण का प्रचार करो, उनके उपदेशों और उनके जीवन का प्रचार करो। किसी आदमी या समाज के विरुद्ध कुछ मत कहना। जातिभेद के पक्ष में या विरुद्ध कुछ मत कहना, और किसी सामाजिक कुरीति के विरुद्ध भी कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। केवल लोगों से यही कहो कि किसी के अधिकार पर हस्तक्षेप मत करो—बस, सब ठीक हो जायगा।

साहसी, दृढ़ निष्ठावाले और प्रेमी युवको, तुम सब को मेरा आशीर्वाद।

तुम्हारा स्नेही—

विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को)

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय।

मार्फत जार्ज डब्ल्यू हेल,
५४१, डियरबोर्न एविन्यू, शिकागो,
१९ मार्च, १८९४

प्रिय राखाल,

इस देश में आने के बाद मैंने तुम्हें कोई पत्र नहीं लिखा, पर हरिदास भाई * के पत्र से सब समाचार मालूम हुए। गिरीश † घोष और तुमने हरिदास भाई की अच्छी खातिर की है, यह ठीक ही हुआ।

इस देश में मुझे कुछ अभाव नहीं है। पर यहाँ भिक्षा का रिवाज नहीं। मुझे परिश्रम, यानी स्थान स्थान पर उपदेश देना पड़ता है। यहाँ जैसी गर्मी है जाड़ा भी वैसा। गर्मी कलकत्ते से तनिक भी कम नहीं। जाडे की बात क्या कहूँ? समूचा देश दो तीन हाथ, कहीं कहीं तो चार पाँच हाथ गहरी बर्फ से ढका रहता है। हाँ, दक्षिण की ओर बर्फ नहीं है। पर बर्फ तो छोटी

* जूनागढ़ के भूतपूर्व दीवान। इन्होंने देशीय रजवाड़ों से स्वामीजी का परिचय करा दिया था।

† भगवान श्रीकृष्ण के अन्तरंग अनुगत गृही शिष्य; बंगाल के प्रसिद्ध नाट्यकार और अभिनेता।

चीज़ हुई। जब पारा ३२ डिग्री पर रहता है तब बर्फ गिरती है। कलकत्ते में पारा ६० डिग्री से नीचे बहुत ही कम उतरता है। इंग्लैण्ड में कभी कभी शून्य तक पहुँच भी जाता है। लेकिन यहाँ पारा शून्य से ४०–५० डिग्री तक नीचे चला जाता है। उत्तरी हिस्से में, जहाँ कैनाडा है, पारा जम जाता है। उस समय सुरा का तापमापक यन्त्र काम में लाया जाता है। जब बहुत ही ठण्डक होती है, अर्थात् जब पारा २० डिग्री के नीचे रहता है, तब बर्फ नहीं गिरती। मुझे खयाल था कि बर्फ गिरी कि ठण्डक की हद हो गई। सो बात नहीं, बर्फ ज़रा कम ठण्ड दिनों मे गिरती है। अत्यधिक ठण्डक में एक तरह का नशा हो जाता है। गाड़ियाँ उस समय नहीं चलतीं; बिना पहिये का स्लेज नाम का एक यान घसीट लिया जाता है। सब कुछ जमकर सख्त हो जाता है—नदी, नाले और झील पर से हाथी भी चल सकता है। न्याग्रा का प्रचण्ड प्रवाहवाला विशाल निर्झर जमकर पत्थर हो गया है! लेकिन मैं अच्छा हूँ। पहले ज़रा डर हुआ था, फिर तो मारे गरज के, रेल से एक दिन कैनाडा के पास, दूसरे दिन अमेरिका के दक्षिण भाग में व्याख्यान देता फिरता हूँ। घर की तरह गाड़ियाँ भाप के नलों से खूब गर्म रखी जाती हैं। चारों तरफ बर्फ के अत्यन्त सफेद ढेर रहते हैं। कैसी अनोखी शोभा है!

बड़ा डर था कि मेरी नाक और कान गिर जायँगे, पर आज तक कुछ नहीं हुआ। हाँ, बाहर जाते समय ढेरों गर्म कपड़े,

उस पर बाल समेत चमड़े का कोट, जूते, फिर जूते पर एक और ऊनी जूता, इन सब सामानों से ढँककर जाना पड़ता है। सांस निकलते ही दाढ़ी में जम जाती है! उस पर तमाशा तो यह है कि घर के भीतर, बिना एक डला बर्फ दिये ये लोग पानी नहीं पीते, क्योंकि घर के अन्दर गर्म है। हरएक कमरा और सीढ़ी भाप के नलों से गर्म रखी जाती है। ये लोग कलाकौशलों में अद्वितीय हैं, भोगाविलास में अद्वितीय हैं, धन कमाने में अद्वितीय हैं, और खर्च करने में भी अद्वितीय हैं। एक कुली की रोजाना आय ६) है; नौकर की भी वही। ३) से नीचे किराये की गाड़ी नहीं मिलती। चार आने से कम का चुरुट नहीं है। २४) में मध्यम दर्जे का एक जोड़ा जूता मिल सकता है। ५००) में एक पोशाक बनती है। इनकी आय भी खर्च जैसी ही है एक एक व्याख्यान में २००) से ३०००) तक मिल सकता है। मुझे * ५००) तक मिला है। हाँ अब तो मुझे यहाँ पौ बारह है। ये मुझे प्यार करते हैं और हजारों आदमी मेरा व्याख्यान सुनने आया करते हैं।

प्रभु की इच्छा से—महाशय से मेरी यहाँ भेंट हुई। पहले तो बड़ी प्रीति थी पर जब सारे शिकागो शहर के नरनारी मुझ

* एक लेक्चर ब्यूरो की बातों में आकर पहले पहल स्वामीजी ने इसकी ओर से कुछ व्याख्यान दिये। लेकिन भेद खुल जाने पर उन्होंने इससे नाता तोड़ लिया और पहले के मिले हुए धन का बहुत सा हिस्सा भारत में अनेक सत्कर्मों में लगा दिया।

पर अनुराग प्रकट करन लगे तब —भैया के मन में आग जलने लगी।........भाई, सब दुर्गुण मिट जाते हैं, पर वह अभागी ईर्ष्या नहीं मिटती........हमारी जाति का वही दोष है—केवल परनिन्दा और ईर्ष्या। वे सोचते हैं कि हमी बड़े हैं—दूसरा कोई बड़ा न होने पाये। "ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे" (जो नाहक औरों के हित के बाधक होते हैं वे कैसे हैं यह हमें नहीं मालूम—भर्तृहरि।)

इस देश की सी औरतें दुनिया भर में नहीं हैं। वे कैसी पवित्र स्वावलम्बी और दयावती हैं। औरतें ही यहाँ की सब कुछ हैं। विद्या बुद्धि आदि सभी उन्हींमें है। "या श्रीः स्वयं सुकृतीनां भवनेषु" (जो पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं लक्ष्मीरूपिणी हैं) इसी देश में हैं, और "पापात्मना हृदयेष्वलक्ष्मीः" (पापियों के हृदय में अलक्ष्मीरूपिणी हैं) हमारे यहाँ हैं—बस यही समझ लो। यहाँ की औरतों को देखकर मेरे तो होश उड़ गये। "त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्री" (तुम्हीं लक्ष्मी हो, तुम्हीं ईश्वरी हो, तुम्हीं लज्जारूपिणी हो) इत्यादि। "या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता" (जे देवी सब प्राणियों में शक्तिरूप से बिराजती हैं) इत्यादि। यहाँ की बर्फ जैसी सफेद है वैसी शुद्ध मनवाली हजारों स्त्रियाँ यहाँ हैं। फिर अपने देश की दस वर्ष की उम्र में बच्चों को जन्म देनेवाली स्त्रियाँ!......प्रभु, मैं अब समझ रहा हूँ। हे भाई, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" (जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ

देवता प्रसन्न रहते हैं)—बूढ़े मनु ने कह रखा है। हम महापापी हैं; स्त्रियों को घृणित कीड़ा, नरक का द्वार इत्यादि कहकर हम अधःपतित हुए हैं। कैसा आकाश और पाताल का अन्तर है! "याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्।" (जहाँ जैसा उचित हो, ईश्वर वहाँ वैसा कर्मफल का विधान करते हैं।—ईश उप०) क्या प्रभु झूठी गप्प से भूलनेवाले हैं? प्रभु ने कहा है, "त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी" (तुम्हीं स्त्री हो और तुम्हीं पुरुष; तुम्हीं कुंवारे हो और तुम्हीं क्वारी।—श्वेताश्वतर उप०) इत्यादि और हम कह रहे हैं, "दूरमपसर रे चण्डाल" (ऐ चण्डाल, परे हट) "केनैषा निर्मिता नारी मोहिनी" (किसने इस मोहिनी नारी को बनाया है?) इत्यादि। दक्षिण भारत में क्या ही अत्याचार उच्च जातियों का नीच जातियों पर मैंने देखा है।......जो धर्म गरीबों का दुःख नहीं मिटाता है, मनुष्य को देवता नहीं बनाता है, क्या वह भी धर्म है? क्या हमारा धर्म धर्म कहलाने योग्य है? हमारा तो छूतमार्ग है—सिर्फ "मुझे मत छुओ," "मुझे मत छुओ।" हे भगवान! जिस देश के बड़े बड़े खोपड़ीवाले आज दो हज़ार वर्ष से सिर्फ़ यही विचार कर रहे हैं कि दाहिने हाथ से खाऊँ कि बाएँ हाथ से, पानी दाहिने ओर से लूँ कि बाईं ओर से,......उनकी अधोगति न होगी तो किसकी होगी? "कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।" (सभों के सोने पर भी काल जागता ही रहता है, काल को कोई नहीं पार कर सकता, ईश्वर सब जान रहे हैं, भला उनकी आँखों में धूल कौन झोंक सकता है?

जिस देश में करोड़ों मनुष्य महुए के फूल खाकर दिन गुजारते हैं, और दस बीस लाख साधु और दस बारह करोड़ ब्राह्मण उन गरीबों का खून चूसकर पीते हैं और उनकी उन्नति के लिये कोई चेष्टा नहीं करते, क्या वह देश है या नरक? क्या वह धर्म है या पिशाच का नृत्य? भाई, इस बात को गौर से समझो—मैं भारतवर्ष को घूमघामकर देख चुका और इस देश को भी। क्या बिना कारण के कहीं कार्य होता है? क्या बिना पाप के सजा मिल सकती है।

सर्वशास्त्रपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥

—"सब शास्त्रों और पुराणों में व्यास के ये दो वचन हैं—परोपकार से पुण्य होता है और पर-पीड़न से पाप।"

क्या यह सच नहीं है?

भाई, यह सब देखकर—विशेष कर देश का दारिद्रय और अज्ञता देखकर—मुझे नींद नहीं आती। मैंने एक युक्ति निकाली—कन्याकुमारी में माता कुमारी के मन्दिर में बैठकर, भारतवर्ष की अन्तिम चट्टान पर बैठकर, मैंने सोचा कि हम जो इतने संन्यासी घूमते फिरते हैं और लोगों को दर्शनशास्त्र की शिक्षा दे रहे हैं, यह सब निरा पागलपन है। क्या हमारे गुरुदेव नहीं कहा करते थे कि खाली पेट से धर्म नहीं होता? वे जो गरीब जानवरों का सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं उसका कारण अज्ञान है। हम चारों युग उनका खून चूसकर पीते आये हैं और उनको पैरों से कुचला है।

कल्पना करो,....यदि कई निःस्वार्थ परोपकारी संन्यासी गांव गांव विद्यादान करते फिरें और भांति भांति के उपाय से मानचित्र, कैमेरा, भू-गोलक आदि के सहारे चण्डाल तक सब की उन्नति के लिये घूमें तो क्या इससे आगे जाकर मङ्गल हो सकेगा कि नहीं? (ये सब संकल्प मैं इतने छोटे से पत्र में नहीं लिख सकता।) बात यह है कि 'यदि पहाड़ मुहम्मद के पास न आये तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास जायेगा।' (अर्थात् यदि गरीब के लड़के विद्यालयों में न आ सकें तो उनके घर पर जाकर उन्हें सिखाना होगा।) गरीब लोग इतने बेहाल हैं कि वे स्कूलों और पाठशालाओं में नहीं आ सकते। और कविता आदि पढ़कर उन्हें कोई लाभ नहीं। हमारी जाति अपनी स्वतंत्र सत्ता खो बैठी है और यही भारत के सारे जञ्जाल का कारण है। हमें जाति को उसकी खोई हुई स्वतंत्र सत्ता (Individuality) वापस देनी होगी और निम्नजातियों को उठाना होगा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सबों ने उनको पैरों तले रौंदा है। उनको उठानेवाली शक्ति भी अन्दर से, अर्थात् सनातनमार्गी हिन्दुओं से ही आयेगी। प्रत्येक देश में बुराइयाँ धर्म के कारण नहीं, बल्कि धर्म को न मानने के कारण ही मौजूद रहती हैं। अतः धर्म का कोई दोष नहीं, दोष मनुष्यों का है।

इसे करने के लिये पहले लोग चाहिये, फिर धन। मेरे गुरुदेव की कृपा से मुझे हरएक शहर में दस पन्द्रह आदमी मिलेंगे। मैं धन की फिक्र में घूमा, पर भारतवर्ष के लोग भला धन से सहायता करेंगे!!

...वे तो मूर्तिमान स्वार्थपरता हैं—भला वे देंगे! इसीलिये मैं अमेरिका आया हूँ; स्वयं धन कमाऊँगा, और तब देश लौटकर अपने जीवन के इस एकमात्र ध्येय की सिद्धि के लिये अपना शेष जीवन निछावर कर दूँगा।

जैसे हमारे देश में सामाजिक गुणों का अभाव है, वैसे यहाँ धर्म का अभाव है। मैं इनको धर्मदान कर रहा हूँ और ये मुझे धन दे रहे हैं। कब तक मेरा उद्देश्य सफल होगा यह तो मैं नहीं जानता।......ये लोग कपटी नहीं और इनमें ईर्ष्या बिलकुल नहीं है। मैं हिन्दुस्तान के किसी के भरोसे नहीं हूँ। स्वयं प्राणपण चेष्टा से अर्थ संग्रह करके अपना उद्देश सफल करूँगा, अथवा उसीके लिये मर मिटूँगा। "सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति।" (जब मृत्यु निश्चित है तो किसी अच्छे काम के लिये मरना ही बेहतर है।)

शायद तुम सोचोगे कि क्या असम्भव बातें कर रहा है!... पर गुरुदेव मुझे पथ दिखायेंगे। हम ईर्ष्या छोड़कर इकट्ठे नहीं रह सकते—यही हमारा जातीय दोष है! वह दोष इस देश में नहीं है, इसीसे ये इतने बड़े हैं।

हम जैसे कुएँ के मेंढक दुनिया भर में हैं नहीं। कोई भी नई चीज किसी देश से आये तो अमेरिका उसे सबसे पहले अपनायेगा।

और हम ? अजी, हमारे ऐसे ऊँचे खानदानवाले दुनिया में और हैं ही नहीं ! हम तो "आर्यवंश" जो ठहरे !!

तुम्हारा,
विवेकानन्द

शिकागो,
२८ मई, १८९४

प्रिय आलासिंगा,

मैं तुम्हारे पत्र का जवाब आज तक नहीं दे सका, क्योंकि मैं न्यूयार्क से बोस्टन तक नाना स्थानों में लगातार घूम रहा था और मैं न—के पत्र की प्रतीक्षा कर रहा था। अपने सम्बन्ध में कुछ लिखने के पूर्व मैं तुमसे न—के विषय में कुछ कहूँगा। कुछ बदमाशों और औरतों के साथ में पड़ने से वह बिलकुल बिगड़ गया है—अब कोई उसे अपने पास तक नहीं फटकने देता। खैर, अधोगति की अन्तिम सीमा तक पहुँचकर उसने मुझको सहायता के लिये लिख भेजा। मैं भी यथाशक्ति उसकी सहायता करूँगा। फिर भी तुम उसके आत्मीयों से कहना कि वे उसके देश लौटने ने लिये जल्दी खर्च भेजें। वे 'कुक' कम्पनी के पते पर रुपया भेज सकते हैं। कम्पनीवाले उसको नगद रुपया न देकर भारत के लिये एक टिकट दे देंगे। मेरे विचार से उसे पैसिफिक महासागर ही होकर जाना अच्छा होगा,

क्योंकि उस रास्ते से बीच में कहीं उतर पड़ने का प्रलोभन कुछ नहीं हैं। बेचारा बड़ी मुसीबत में पड़ा हुआ है। अवश्य मैं इसका ख्याल रखूँगा कि वह भूख से कोई कष्ट न पाये। फोटोग्राफ के बारे में मुझे यही कहना है कि इस समय मेरे पास एक भी नहीं है—कई एक भेजने के लिये आर्डर दे दूँगा। महाराज खेतड़ी को मैंने कई एक भेजे थे और उन्होंने उनमें से कुछ छपवाये भी थे; इस बीच में तुम उन्हें उनमें से कुछ भेजने के लिए लिख सकते हो।

मैं नहीं जानता कि कब भारत को लौटूँगा। सब भार ईश्वर ही पर छोड़ देना ठीक है, जो मेरे पीछे रह कर मुझे चला रहा है।

मुझे छोड़कर काम करने की कोशिश करो, मानो मैं कभी था ही नहीं। किसी व्यक्ति या किसी वस्तु की अपेक्षा न करना। जितना हो सके करते जाओ। किसी का कुछ भरोसा न रखना। धर्मपाल ने जो तुमसे कहा था कि मैं इस देश से चाहे जितना रुपया जमा कर सकता हूँ, यह बात ठीक नहीं है। इस वर्ष इस देश में बड़ा ही अकाल पड़ा हुआ है—ये अपने यहाँ के गरीबों के ही सब अभाव दूर नहीं कर सकते हैं। जो हो मैं इसलिए उनको धन्यवाद देता हूँ कि मैं इस समय भी उनके अपने व्याख्यानदाताओं की अपेक्षा अधिक सुभीता पा रहा हूँ।

लेकिन यहाँ खर्च बहुत होता है। यद्यपि मैंने प्रायः सदा और सब कहीं अच्छे अच्छे और बड़े बड़े कुटुम्बों में आश्रय पाया है तो भी रुपया मानो उड़ ही जाता है।

मैं बता नहीं सकता कि आगामी गर्मी में यहाँ से चला जाऊँगा या नहीं; शायद नहीं।

इस बीच में तुमलोग संघबद्ध होने और हमारे उद्देश्य को अग्रसर करने का प्रयत्न करना। विश्वास रखो कि तुम सब कुछ कर सकते हो। याद रखना कि प्रभु हमारे साथ हैं, और ऐ बहादुर लड़को! अग्रसर होते रहो।

मेरे देश ने मेरा बहुत आदर किया है। आदर करे चाहे न करे, तुम लोग सोते न रहो। प्रयत्न में शिथिल न होना। याद रखना कि हमारे उद्देश्य की एक बूँद भी अब तक कार्यरूप में परिणत नहीं हुई है। शिक्षित युवकों पर प्रभाव डालो और उनको इकट्ठा कर एक संघ बनाओ। बड़े बड़े काम केवल पूरे स्वार्थत्याग से ही बन सकते हैं। स्वार्थ की ज़रूरत नहीं, न नाम की, न यश की,—तुम्हारे भी नहीं, मेरे भी नहीं, यहाँ तक कि हमारे गुरुदेव के भी नहीं। जिससे उद्देश्य, लक्ष्य, कार्य में परिणत हो जाय उसी का प्रयत्न करो। ऐ मेरे साहसी, महान, सदाशय बच्चो! काम में दिलोजान से लग जाओ। नाम, यश अथवा अन्य तुच्छ विषयों के लिए पीछे मत देखो। स्वार्थ को बिलकुल त्याग दो और कार्य करो। याद रखना—"तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्त-दन्तिनः"—अर्थात् बहुत से तिनकों के मिलने से रस्सी बन जाती है जिससे कि मतवाला हाथी बँध सकता है। तुम सब पर भगवान का आशीर्वाद बरसे। उसकी शक्ति तुम सब के भीतर आये।

मुझे विश्वास है कि उसकी शक्ति तुममें वर्तमान है ही। वेद कहते हैं "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत"—उठो जागो और बिना लक्ष्य पर पहुँचे मत ठहरो। जागो, जागो, लम्बी रात बीत रही है, दिन का प्रकाश हो रहा है। ऊँची तरङ्ग उठ रही है, उसका भीषण वेग किसी से न रुक सकेगा। यदि मुझे तुम्हारे पत्रों का उत्तर देने में देर हो जाय तो दुःखित या निराश मत होना। लिखने में क्या फल है ? उत्साह, प्यारे, उत्साह ! प्रेम, बच्चो, प्रेम ! विश्वास और श्रद्धा ! अगर ये रहे तो कुछ डर नहीं। भय ही सब से बड़ा पाप है।

सब को मेरा आशीर्वाद। मद्रास के जिन महाशयों ने हमारे कार्य में सहायता की थी उन सभी को मेरी अनन्त कृतज्ञता और प्रेम। परन्तु मेरी उनसे प्रार्थना है कि वे काम में शिथिलता न करें; चारों तरफ भावों को फैलाते रहो।

घमंडी न होना। सबको हठ से किसी संकीर्ण मत में लाने की कोशिश कभी मत करो। किसी मतविशेष के विरुद्ध भी कुछ मत कहना। हमारा काम केवल यही है कि हम अलग अलग रासायनिक पदार्थों को एक साथ रख दें। प्रभु ही जानते हैं कि किस तरह और कब वे मिलकर दाने बन जायेंगे। सब से ऊपर, मेरी या अपनी सफलता पर घमंड न करना, अभी बड़े बड़े काम करने बाकी हैं। भविष्य में होनेवाली सिद्धि की तुलना में यह बहुत तुच्छ है। विश्वास रखो, विश्वास रखो—प्रभु की आज्ञा है कि भारत

की उन्नति अवश्य ही होगी और साधारण तथा गरीब लोग सुखी होंगे और इसलिए प्रसन्न हो कि तुम्हीं लोग उनका कार्य करने के लिए चुने हुए यंत्र हो। धर्म की बाढ़ आगई है। मैं देखता हूँ कि वह दुनियाँ को वहा ले जा रही है और कोई भी चीज़ उसको रोक नहीं सकती—वह अनन्त और सर्वग्रासी है। तुम सभी आगे बढ़ो, सब की शुभ इच्छा उसके साथ मिलाओ, सभी हाथ उसके मार्ग की बाधायें हटा दें। जय! प्रभु की जय! सु—,कृ—, भट्टाचार्य और मेरे अन्यान्य मित्रों को मेरा गहरा प्रेम और श्रद्धा जनाना। कहना कि यद्यपि अवकाश न मिलने से मैं उनको कुछ लिख नहीं सकता हूँ तो भी मेरा हृदय उनके प्रति बहुत ही आकृष्ट है। मैं उनका ऋण कभी नहीं चुका सकूँगा। प्रभु उन सबको अशीर्वाद दें।

मुझे कोई सहायता की आवश्यकता नहीं है। तुम लोग कुछ धन इकट्ठा कर एक कोष बनाने का प्रयत्न करो। शहर में जहाँ गरीब से गरीब लोग रहते हैं वहाँ एक मिट्टी का घर और एक हॉल बनाओ। कुछ मैजिक लैनटर्न, थोड़े से नक्शे, ग्लाबे और रासायनिक पदार्थ इकट्ठा करो। हर रोज शाम को वहाँ गरीबों को—यहाँ तक कि चण्डालों को—जमा करो। पहिले उनको धर्म के उपदेश दो, बाद को उन मैजिक लालटेनों और दूसरे पदार्थों के सहारे ज्योतिष, भूगोल आदि बोलचाल की भाषा में सिखाओ। एक अति तेजस्वी युवक-सम्प्रदाय बनाओ, और

अपनी उत्साहाग्नि उनमें जला दो। धीरे धीरे इस सम्प्रदाय को बढ़ाते रहो—धीरे धीरे उसकी सीमा बढ़ने दो। तुम लोगों से जितना हो सके करो। जब नदी में कुछ पानी नहीं रहेगा तभी पार होंगे। सोच कर बैठे मत रहो! अखबार और मासिकपत्र आदि चलाना है तो ठीक, लेकिन बहुत देर तक चिल्लाने और कलम घिसने की अपेक्षा थोड़ा सा सच्चा काम कहीं बढ़कर है। भट्टाचार्य के घर पर एक सभा बुलाओ और कुछ धन जमाकर ऊपर कही हुई चीज़ें खरीदो। एक कुटिया किराये पर लो और काम में लग जाओ। अखबार आदि गौण साधन हैं और यही मुख्य है। जिस तरह हो सके साधारण गरीबों की उन्नति अवश्य ही करनी है। कार्य का आरम्भ बहुत मामूली हुआ, यह सोचकर डरो मत। साहस करो। नेता बनना मत चाहो—सेवा करते रहो। नेता बनने की इस घृणित प्रवृत्ति ने जीवनरूपी समुद्र में बहुत से बड़े बड़े जहाजों को डुबा दिया है। इस विषय में सावधान रहना, अर्थात् मृत्यु तक को तुच्छ समझ कर निःस्वार्थ हो जाओ और काम करो। मुझे जो जो कहना था सब तुमको लिख नहीं सका। ऐ वीर बालको! प्रभु तुमको सब समझा देंगे। कार्य में लग जाओ। ऐ प्यारे बच्चो! अब देर करने का अवसर नहीं है। प्रभु की जय हो! किडी को मेरा प्रेम जनाना। मुझे सेक्रेटरी साहब का पत्र मिल गया है।

तुम्हारा शुभाकांक्षी,
विवेकानन्द

(मैसूर के महाराजा को)

शिकागो,

२३ जून, १८९४

महाराज,

श्रीनारायण आपकी और आपके कुटुम्ब की कुशल करें। महाराज की उदार सहायता ने मेरा इस देश में आना सम्भव कर दिया। तब से यहाँ लोग मुझे खूब जान गये हैं, और इस देश के मेहमानदार अधिवासियों ने मेरे सब अभाव दूर कर दिये। यह एक अद्‌भुत देश है और यह जाति भी कई बातों में एक अद्‌भुत जाति है। और कोई जाति अपने दैनिक कामों में इतने कलपुर्जों का व्यवहार नहीं करती जितने कि यहाँ के लोग। यहाँ सब कुछ यन्त्रों से ही हो रहा है। फिर देखिये कि ये लोग संसार की सारी लोकसंख्या के मुकाबिले पाँच फी सदी भर है। पर तोभी संसार के कुल धन के पूरे छठांश के ये मालिक हैं। इनके धन तथा विलास की सामग्रियों का कोई ठिकाना नहीं है। पर तोभी यहाँ सभी चीज़ें बहुत महँगी होती हैं। मजदूरों का मिहनताना यहाँ दुनिया में सब जगह से ज्यादा है, पर मजदूरों और पूंजीपतियों के बीच झगड़ा सदा चला ही करता है।

अमेरिका की नारियों को जितने अधिकार प्राप्त हैं उतने दुनिया भर में और कहीं की स्त्रियों को नहीं। धीरे धीरे सब कुछ

वे अपने कब्जे में कर रही हैं, और आश्चर्य की बात तो यह है कि सुशिक्षित पुरुषों की अपेक्षा यहाँ सुशिक्षित स्त्रियों की संख्या कहीं अधिक है। हाँ, उच्च प्रतिभा का विकास अधिकतर पुरुषों में ही है। पाश्चात्यवासी हमारे जातिभेद की चाहे जितनी कड़ी समालोचना करें, पर उनके बीच भी एक ऐसा जातिभेद है जो हमारे यहाँ से भी बुरा है—वह अर्थगत जातिभेद है। अमेरिका-वासी ठीक ही कहते हैं कि यहाँ रुपया ही सर्वशक्तिमान है—वह सब कुछ कर सकता है। दुनिया के और किसी देश में इतने कानून नहीं हैं, पर किसी दूसरे देश में इनकी इतनी कम परवा भी नहीं की जाती।

सब मिलाकर हमारे गरीब हिन्दू लोग किसी भी पाश्चात्य मनुष्य से लाखों गुने अधिक नीतिपरायण हैं। धर्म के विषय में यहाँ के लोग या तो कपटी होते हैं या हठी। विचारशील लोग अपने कुसंस्कारपूर्ण धर्मों से ऊब गये हैं और नई रोशनी के लिये भारत की ओर ताक रहे हैं। महाराज यह बिना देखे ठीक मालूम नहीं कर सकते कि किस चाव से पवित्र वेदों के उन महान विचारों का एक छोटासा कण भी वे ग्रहण करते हैं, जो आधुनिक विज्ञान की कड़ी से कड़ी चोटों को सह लेते हैं और इनसे उनकी तनिक भी क्षति नहीं होती। शून्य से जगत की उत्पत्ति; आत्मा का सृजित होना; ईश्वर वह बड़ा स्वेच्छाचारी बादशाह है जो स्वर्ग नामक स्थान में सिंहासन पर बैठा हुआ है; और अनन्त नरकाग्नि—ऐसी

ऐसी कल्पनाओं से सभी शिक्षित लोगों का जी ऊब गया है, और किसी न किसी रूप में सृष्टि और आत्मा का अनादित्व और ईश्वर का हमारी अपनी आत्मा में विराजमान रहना—वेदों के इन महान विचारों को वे जल्दी ग्रहण कर रहे हैं। पचास वर्ष के भीतर ही संसार के सभी शिक्षित लोग आत्मा और सृष्टि दोनों के अनादित्व पर विश्वास करेंगे और ईश्वर को हमारी ही आत्मा का उच्चतम और श्रेष्ठ रूप मानने लगेंगे, जैसा कि हमारे पवित्र वेद शिक्षा दे रहे हैं। अभी अभी उनके विद्वान पादड़ी बाईबिल की वैसी ही व्याख्या कर रहे हैं। मेरा सिद्धान्त यह है कि उन्हें धार्मिक सभ्यता का अधिक प्रयोजन है और हमें ऐहिक या भौतिक शिक्षा का।

भारतवर्ष के सभी अनर्थों की जड़ है भारत के जनसाधारण की दुर्गति। पाश्चात्य देशों के गरीब तो निरे पशु हैं। उनकी तुलना में हमारे यहाँ के गरीब तो देवता हैं। इसीलिये हमारे यहाँ के गरीबों की उन्नति करना खूब सहज है। हमारी निम्न जातियों के लिये केवल यही सेवा आवश्यक है कि उनको शिक्षा दी जाय, और अपने खोये हुए वैशिष्ट्य—व्यक्तित्व—का उन्हें फिर से लाभ हो जाय। यही हमारे देशी राजाओं की ओर से साधारण प्रजा के प्रति सब से बड़ा कर्तव्य है। अब तक इस ओर कुछ काम नहीं हुआ। सदियों से पौरोहित्यशक्ति और विदेशी विजेताओं ने उन्हें कुचल डाला है, जिसका फल यह हुआ कि भारत के दरिद्र यह बात भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं। उनमें विचार पैदा करना

होगा। उनके चारों तरफ दुनिया में क्या क्या हो रहा है, इस विषय में उनकी आँखें खोल देनी चाहिये; बस तभी वे अपनी मुक्ति स्वयं सिद्ध कर लेंगे। प्रत्येक जाति, और प्रत्येक पुरुष प्रत्येक स्त्री को अपनी अपनी मुक्ति सिद्ध करनी पड़ेगी। उनमें विचार पैदा कर दो—बस, उन्हें उसी एक सहायता का प्रयोजन है,—बाकी सब कुछ इसके फल स्वरूप आप ही आ जायँगे। हमें सिर्फ रासायनिक सामग्रियों को इकट्ठा कर देना चाहिये, उनका विशिष्ट आकार पाना—दाना बँध जाना—प्राकृतिक नियमों से ही साधित होगा। हमारा कर्तव्य है उनके सिर में भावों का संचार कर देना—बाकी वे स्वयं कर लेंगे। भारतवर्ष में बस यही करना चाहिये। बहुत दिनों से यही विचार मेरे मन में काम कर रहा है। भारत में इसे मैं काम न ला सका, और मेरे इस देश में आने का यही कारण था। गरीबों को शिक्षा देने में मुख्य बाधा यह है, मान लिया कि महाराज ने हरएक गांव में एक एक निःशुल्क पाठशाला खोल दी, तोभी इससे कुछ काम न होगा, क्योंकि भारत में ऐसा दारिद्र्य है कि गरीब लड़के पाठशाला आने के बजाय खेतों में अपनी माता-पिता को मदद देंगे, या दूसरे किसी तरीके से रोटी कमाने की कोशिश करेंगे। अच्छा यदि पहाड़ मुहम्मद के पास न आया तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास क्यों न जायँ? यदि गरीब लड़का शिक्षा के मन्दिर तक न आ सका तो शिक्षा को ही उसके पास क्यों न जाना चाहिये।

हमारे देश में हजारों एकनिष्ठ और त्यागी साधु हैं जो गांव गांव धर्म की शिक्षा देते फिरते हैं। यदि उनमें से कई एक सुनियन्त्रित रूप से ऐहिक विषयों के भी शिक्षक बनाये जायँ तो गांव गांव, दर दर जाकर वे केवल धर्मशिक्षा ही न देंगे बल्कि ऐहिक शिक्षा भी दिया करेंगे। कल्पना कीजिये कि उनमें से दो शाम को साथ में एक मैजिक लैंटर्न, एक गोलक और कुछ बक्स आदि लिये किसी गांव में गये। इसी तरह वे अपढ़ लोगों को बहुत कुछ गणित, ज्योतिष और भूगोल सिखा सकते हैं। विभिन्न जातियों के सम्बन्ध की कहानियाँ कहकर वे गरीबों को बातों में उससे सौगुने समाचार दे सकते हैं जितने कि वे जीवन भर में किताबों से पा सकते। इसके लिये एक सुनियन्त्रित कार्यप्रणाली की आवश्यकता है जो फिर, धन पर निर्भर रहती है। इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करने के लिये भारत में मनुष्य तो बहुत हैं, पर हाय, वे निर्धन हैं। एक पहिये को पहले पहल गतिशील करना बड़ा कठिन काम है, पर एकबार गतिशील हुआ कि वह क्रमशः अधिकाधिक वेग से चलने लगता है। अपने देश में सहायता पाने का प्रयत्न कर और धनिकों से कुछ सहानुभूति न पाकर, मैं महाराज की सहायता से इस दूर देश में आया। अमेरिकावासियों को इस बात की तनिक भी परवा नहीं कि भारत के गरीब जियें या मरें। और परवा भी वे क्यों करने लगे, जब कि हमारे अपने देशवासी सिवाय अपने स्वार्थ की बातों के और किसी विषय की चिन्ता नहीं करते?

हे महामना राजन, यह जीवन क्षणस्थायी है, संसार के भोग-विलास की सामग्रियाँ भी क्षणभंगुर हैं पर जीते वे ही हैं जो दूसरों के लिये जीवन धारण करते हैं। बाकी लोगों का जीना तो मरने ही के बराबर है। महाराज, आप जैसे उन्नत, महामना देशीय राजा भारत को फिर से अपने पैरों पर खड़ा कर देने के लिये बहुत कुछ कर सकते हैं। और इस तरह भावी वंशजों के लिये एक ऐसा नाम छोड़ जा सकते हैं जो चिरकाल तक पूजित होता रहे।

ईश्वर आपके महान हृदय में भारत के उन लाखों नरनारियों के लिये गहरी सहानुभूति पैदा कर दे जो अज्ञता में गड़े हुए दुःख झेल रहे हैं—यही विवेकानन्द की प्रार्थना है।

भवदीय,

विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को)

न्यूयार्क,

२५ सितम्बर, १८९४

प्रिय राखाल,

तुमलोगों के कई पत्र मिले। शशी आदि जो प्रलय मचाये हुए हैं इससे मुझे बड़ी खुशी है। प्रलय मचाना ही होगा, इससे कम में किसी तरह नहीं चल सकता। कुछ परवा नहीं। दुनिया

भर में प्रलय मच जायगा, वाह गुरु की फतह। अरे भाई, 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' (अच्छे कर्मों में कितने ही विघ्न आते हैं,) उन्हीं विघ्नों की रेलपेल में आदमी तैयार होता है।.......मिशनरीफिशनरी का काम थोड़े ही है जो यह धक्का सँभाले?........बड़े बड़े बह गये, अब गड़रिये का काम है जो थाह ले! यह सब नहीं चलने का भैया, कोई चिन्ता न करना। सभी कामों में एक दल वाहवाही देता है तो दूसरा दल शत्रुता ठानता है; अपना काम करते जाओ, किसीकी बात का जवाब देने से क्या काम! सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येनैव पन्था विततो देवयानः।' (सत्य की ही विजय होती है, मिथ्या की नहीं; सत्य के ही बल से देवयानमार्ग की गति मिलती है।)........धीरे धीरे सब होगा।

इस देश में गरमियों के दिनों में सब समुद्र के किनारे चले जाते हैं—मैं भी गया था। यहाँ वालों को नाव खेने और जहाज चलाने का रोग है। इयट नाम के छोटे छोटे जहाज, लड़के बूढ़े जिस किसी के धन है उसी के एक एक है। उन्हींमें पाल लगाकर लोग समुद्र की सैर कर आते हैं, खाते-पीते नाचते-कूदते और गाना-बजाना तो दिनरात लगा ही रहता है। पियानो के मारे नाकों दम हो जाता है—घर में टिकना दुश्वार हो जाता है!

हाँ, तुम जिन जी. डब्लू. हेल के पते पर चिट्ठियाँ भेजते हो उनकी भी कुछ बातें लिखता हूँ। वे हैं और उनकी वृद्धा पत्नी। दो कन्याएँ हैं, दो भतीजियाँ और एक लड़का। लड़का रोजगारी

है, इसलिये उसे दूसरी जगह रहना पड़ता है। घर में लड़कियाँ रहती हैं। इस देश में लड़की का रिश्ता ही रिश्ता है। लड़के का विवाह होते ही वह और हो जाता है, कन्या के पति को अपनी स्त्री से मिलने के लिये प्रायः उसके बाप के घर जाना पड़ता है। यहाँवाले कहते हैं—

'Son is son till he gets a wife,
The daughter is daughter all her life.' *

चारों कन्याएँ युवती हैं—विवाह नहीं किया। विवाह होना इस देश में महा कठिन काम है। पहले तो, मन के लायक वर हो, दूसरे धन हो। लौंडे दिल्लगी में तो बड़े पक्के हैं, परन्तु पकड़ में आने के वक्त नौ दो ग्यारह! लड़कियाँ नाचकूदकर एक पति फँसाने की कोशिश करती हैं, लौंडे जाल में पड़ना नहीं चाहते। आखिर इसी तरह एक 'लव' (प्यार) हो जाता है—तब शादी होती है। यह हुई साधारण बात—परन्तु हेल की लड़कियाँ रूपवती हैं—बड़े आदमी की लड़कियाँ हैं—विश्वविद्यालय की छात्री हैं—नाचने, गाने और पियानो बजाने में अद्वितीय हैं—कितने ही लड़के चक्कर मारते हैं—उनकी नजर में नहीं चढ़ते। जान पड़ता है वे शादी विवाह नहीं करेंगी—तिसपर अब मेरे साथ रहने के कारण महा वैराग्य सवार हो गया है। वे इस समय ब्रह्मचिन्ता में लगी रहती हैं।

---

* जब तक विवाह नहीं होता लड़का तभी तक लड़का है, परन्तु कन्या सदा ही कन्या है।

दोनों लड़कियों के बाल सुनहले हैं और दोनों भतीजियों के काले। ये "जूते सीने से चण्डी पाठ" तक सब जानती हैं। भतीजियों के उतना धन नहीं है—उन्होंने एक किंडर-गार्टेन स्कूल खोला है—लड़कियाँ कोई रोजगार नहीं करतीं। कोई किसीके भरोसे नहीं है। करोड़पतियों के लड़के भी रोजगार करते हैं, विवा करके अलग किराये का मकान लेकर रहते हैं। लड़कियाँ मुझे दादा कहती हैं, मैं उनकी माँ को माँ कहता हूँ। मेरा सब सामान उन्हींके घर में है। मैं कहीं भी जाऊँ, वे अच्छी तरह देखभाल करती हैं। यहाँ के सब लड़के बचपन से ही रोजगार में लग जाते हैं और लड़कियाँ विश्वविद्यालय में पढ़ती लिखती हैं—इसीलिये यहाँ की सभाओं में ९० फी सदी स्त्रियाँ रहती हैं, उनके आगे लौंडों की दाल नहीं गलती।

इस देश में पिशाचविद्या के पण्डित बहुत हैं। मीडियम वही है जो भूत बुलाता है। मीडियम एक पर्दे की आड़ में जाता है और पर्दे के भीतर से भूत निकलते रहते हैं, बड़े-छोटे, हर रंग के। मैंने भी कई भूत देखे, परन्तु ठगविद्या ही जान पड़ती है। और कुछ देखकर सिद्धान्त निश्चित करूँगा। उस विद्या के पण्डित मुझपर बड़ी श्रद्धा रखते हैं।

दूसरा है क्रिश्चियन सायन्स—यही आजकल सबसे बड़ा दल है—सर्वत्र इसका प्रभाव है। ये खूब फैल रहे हैं और कट्टरतावादियों की छाती में शूल से चुभ रहे हैं। ये वेदान्ती हैं, अर्थात्

अद्वैतवाद के कुछ मतों का संग्रह करके, उन्हींको बाईबिल में घुसेड़ दिया है और 'सोऽहम् सोऽहम्' कहकर रोग अच्छा कर देते हैं—मन के बल से। ये सब मेरी बड़ी खातिरदारी करते हैं।

आजकल यहाँ कट्टरता के पक्षवाले 'त्राहि माम्' मचाये हुए हैं। प्रेतोपासना की अब जड़ सी हिल गई है। प्रेतोपासक मुझे यम जैसा देखते हैं। कहते हैं, यह पापी कहाँ से टपक पड़ा, देश भर के स्त्री-पुरुष इसके पीछे लगे फिरते हैं—कट्टरता की जड़ काटना चाहता है। आग लग गई है भैया, गुरु की कृपा से जो आग लगी है, वह बुझने की नहीं। समय आयेगा जब कट्टरतावादियों का दम निकल जायगा।....

थियोसफिस्टों का ऐसा कुछ दबदबा नहीं है। किन्तु वे भी कट्टरों के पीछे पड़े हुए हैं।

यह क्रिश्चियन सायन्स ठीक हमारे देश के 'कर्ताभजा' वालों की तरह है। कह तू कि रोग नहीं है—बस, अच्छा हो गया, और कह 'सोऽहम्'—बस छुट्टी है, चरो खाओ। यह देश घोर जड़-वादी है—ये क्रिश्चियन देश के लोग—बीमारी अच्छी करो, करामात दिखलाओ, पैसे कमाने का रास्ता बताओ तब धर्म मानते हैं—और कुछ विशेष नहीं समझते। परन्तु कोई कोई अच्छे हैं। जितने बदमाश मिशनरीवाले हैं—उन्हें ठगकर पैसे कमाते हैं और इस तरह उनका पापमोचन करते हैं।

मैं इस समय मद्रासियों के अभिनन्दन का, जिसे छापकर यहाँ के संवादपत्रवालों ने ऊधम मचा दिया था, जवाब लिखने में लगा हूँ। अगर सस्ते में होगा तो छापकर भेजूँगा। यदि महँगा होगा तो टाइप करके भेजूँगा। तुम्हारे पास भी एक कापी भेजूँगा—'इण्डियन मिरर' में छपा देना। इस देश की अविवाहिता कन्याएँ बड़ी अच्छी हैं। उनमें मर्यादा का भय रहता है।........ये विरोचन के वंशज हैं। शरीर ही इनका धर्म है, उसीको माजते-धोते हैं—उसीको लेकर हैं। नख काटने के कमसे कम हजार औजार हैं, बाल काटने के दस हजार, और कपड़े, पोशाक, तेल-फुलेल का तो ठिकाना ही नहीं।......ये भले आदमी हैं, दयालु हैं, सत्यवादी हैं। सब अच्छा है परन्तु वही 'भोग' उनके भगवान हैं। धन की नदी, रूप की तरंग, विद्या की वीचि, विलास का जमघट !

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥

(कर्म की सिद्धि की आकांक्षा करके इस लोग में देवताओं का यजन किया जाता है। कर्मजनित सिद्धि मनुष्यलोक में बहुत जल्दी मिलती है।)

अद्भुत चमकदमक और बल का विकास है—कितना बल, कैसी कार्यकुशलता, कैसी ओजस्विता ! हाथी जैसे घोड़े बड़े बड़े मकान जैसी गाड़ियाँ खींच रहे हैं। ऐसे ढंगों का यहीं से आरम्भ है। महाशक्ति का विकास है—ये सब वाममार्गी हैं। उसकी सिद्धि यहाँ

हुई ! खैर—इनकी स्त्रियों को देखकर मेरे तो होश उड़ गये हैं। मुझे बच्चे की तरह घर-बाहर, दूकान-बाजार में लिये फिरती हैं। सब काम करती हैं, मैं उसका चौथाई हिस्सा भी नहीं कर सकता ! ये रूप में लक्ष्मी और गुण में सरस्वती हैं—ये साक्षात् जगदम्बा हैं, इनकी पूजा करने से सर्वसिद्धि मिल सकती है। अरे राम भजो, हम भी आदमी हैं ? इस तरह की माँ जगदम्बा अगर अपने देश में एक हजार तैयार करके मर सकूँ तो निश्चिन्त होकर मर सकूँगा। तभी तुम्हारे देश के आदमी आदमी कहलाने लायक हो सकेंगे। तुम्हारे देश के पुरुष, इनकी स्त्रियों के पास भी आने योग्य नहीं हैं—तुम्हारी स्त्रियों की बात ही क्या है ! हरे हरे, महा पापी हैं ! दस साल की लड़की का विवाह कर देते हैं। हे प्रभु, हे प्रभु ! किमधिकमिति ।

मैं इन गजब की औरतों को ही देखता रहता हूँ। माँ जगदंबा की यह कैसी कृपा है ! ये कैसी स्त्रियाँ हैं बाप रे ! मर्दों को एक कोने में ठूंस देना चाहती हैं। मर्द गोते खा रहे हैं। माँ, तेरी ही कृपा है।—स्त्री-पुरुष-भेद की जड़ नहीं रखूँगा। आत्मा में भी कहीं लिंग का भेद है ? स्त्री और पुरुष का भाव दूर करो, सब आत्मा है। शरीराभिमान छोड़कर खड़े हो जाओ। कहो अस्ति, अस्ति; नास्ति नास्ति करके देश गया। सोऽहम् सोऽहम् शिवोऽहम्। कैसा उत्पात ! हरएक आत्मा में अनन्त शक्ति है। अरे नहीं नहीं करके क्या तुम कुत्ता-बिल्ली हो जाओगे ? नहीं है ? क्या नहीं है ?

—किसके नहीं है? शिवोऽहम् शिवोऽहम्। नहीं नहीं सुनने पर मेरे सिर पर वज्रपात होता है। यह जो दीन-हीन भाव है, यह एक बीमारी है—क्या यही दीनता है?—यह गुप्त अहंकार है। न लिंगं धर्मकारणं, समता सर्वभूतेषु एतन्मुक्तस्य लक्षणम्। अस्ति अस्ति, सोऽहम् सोऽहम्, चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्। निर्गच्छति जगज्जालात् पिंजरादिव केशरी। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।* विशाल बर्फराशि (Avalanche) की तरह दुनिया पर टूट पड़ो —दुनिया फट जाये चट-चट करके,—हर हर महादेव! उद्धरेदात्मनात्मानम् (अपने ही सहारे अपना उद्धार करना।)

........इस तरह का दिन क्या कभी होगा कि परोपकार के लिये जान जायगी? दुनिया बच्चों का खिलवाड़ नहीं है—बड़े आदमी वे हैं जो अपने हृदय-रुधिर से दूसरों का रास्ता तैयार करते हैं—यही सदा से होता आया है—एक आदमी अपना शरीर-पात करके सेतु निर्माण करता है, और हजारों आदमी उसके ऊपर से नदी पार करते हैं। एवमस्तु एवमस्तु, शिवोऽहम् शिवोऽहम्, (ऐसा ही हो, ऐसा ही हो—मैं ही शिव हूँ, मैं ही शिव हूँ)।....

मद्रास में खूब आन्दोलन मच गया, यह खुश खबर है।

---

* बाहरी चिन्ह धर्म के कारण नहीं हैं। सर्वभूतों में समता रखना ही मुक्त पुरुषों का लक्षण है। (कहो) अस्ति अस्ति (वे हैं—वे हैं,) वह मैं ही हूँ वह मैं ही हूँ, मैं चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ। जिस तरह सिंह पिंजरे से निकलता है, उसी तरह जगज्जाल से वे भी निकल पड़ते हैं। दुर्बल मनुष्य इस आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

सुना था, तुमलोग एक अखबार निकालना चाहते हो, उसकी क्या खबर है? सबके साथ मिलना होगा, किसीके पीछे पड़ने से काम नहा होगा। अशुभ शक्तियों के विरुद्ध शुभ शक्तियों का प्रयोग करना होगा—असल बात यही है। हमारे गुरु पर जबरन लोगों को विश्वास करने के लिये न कहना। ....तुम लोगों को एक संवादपत्र का सम्पादन करना होगा। उसमें आधी बंगला रहेगी, आधी हिन्दी। हो सके तो एक और अखबार अंगरेजी में। ....जहाँ जाओगे वहीं एक स्थायी विद्यालय खोलना होगा। परन्तु आदमी बदलते रहेंगे। मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ।—इसके समाप्त होते ही बस एक ही दौड़ में घर लूँगा। ....सदा याद रखना कि परमहंसदेव संसार के कल्याण के लिये आये थे—नाम या मान के लिये नहीं। वे जो कुछ सिखाने के लिये आये थे, वही फैलाओ। उनके नाम की जरूरत नहीं—उनका नाम आप होगा। हमारे गुरुदेव को मानना पड़ेगा यह कहने ही से दलबन्दी होगी। और सब फाश हो जायगा—सावधान! सभीसे मधुर-भाषण—गुस्सा करने ही से काम बिगड़ता है। जिसका जो जी चाहे कहे, आपे में मस्त रहो—दुनिया तुम्हारे पैरों तले आ जायगी, चिन्ता मत करो। कहते हैं—इस पर विश्वास करो, उस पर विश्वास करो;—मैं कहता हूँ—पहले अपने पर विश्वास करो। अपने पर विश्वास करो—सब शक्ति तुममें है—इस पर दृढ़ धारणा करके इसे उभाड़ो—कहो, हम सब कुछ कर सकते हैं। "नहीं नहीं कहने से साँप में

विष भी नहीं रह जाता।" "नहीं नहीं" कहो, हाँ हाँ, 'सोऽहम्' सोऽहम्।'

किन्नाम रोदिषि सखे त्वयि सर्वशक्तिः
आमन्त्रयस्व भगवन् भगदं स्वरूपम्।
त्रैलोक्यमेतदखिलं तव पादमूले
आत्मैव हि प्रभवते न जडं कदाचित्॥ *

महा हुंकार के साथ कार्य का आरंभ कर दो। भय क्या है? किसकी शक्ति है जो बाधा डाले? कुर्मस्तारकचर्वणम् त्रिभुवनमुत्पाटयामो बलात्। किं भो न विजानास्यस्मान्—रामकृष्णदासा वयम्।* भय? किसका भय? किन्हें भय!

क्षीणा स्म दीनाः सकरुणा जल्पन्ति मूढा जनाः
नास्तिक्यन्त्विदन्तु अहह देहात्मवादातुराः।
प्राप्ताः स्म वीरा गतभया अभयं प्रतिष्ठां यदा
आस्तिक्यन्त्विदन्तु चिनुमः रामकृष्णदासा वयम्॥
पीत्वा पीत्वा परमममृतं वीतसंसाररागाः
हित्वा हित्वा सकलकलहप्रापिणीं स्वार्थसिद्धिम्।

---

* हे सखे, तुम क्यों रो रहे हो? सब शक्ति तो तुम्हीं में है। हे भगवन्, अपना ऐश्वर्यमय स्वरूप विकसित करो। ये तीनों लोक तुम्हारे पैरों के नीचे हैं। जड़ की कोई शक्ति नहीं—प्रबल शक्ति आत्मा की ही है।

* (१) हम ताराओं को अपने दांतों के नीचे पीस दे सकते हैं, बलपूर्वक तीनों लोक का उत्पाटन कर सकते हैं, हमें नहीं जानते? हम श्रीरामकृष्ण के दास हैं।

ध्यात्वा ध्यात्वा गुरुवरपदं सर्वकल्याणरूपं
नत्वा नत्वा सकलभुवनं पातुमामन्त्रयामः ॥
प्राप्तं यद्वै त्वनादिनिधनं वेदोदधिं मथित्वा
दत्तं यस्य प्रकरणे हरिहरब्रह्मादिदेवैर्बलम् ।
पूर्णं यत्तु प्राणसारैर्भौमनारायणानाम्
रामकृष्णस्तनुं धत्ते तत्पूर्णपात्रमिदं भोः ॥ †

अंगरेजी पढ़े-लिखे युवकों में कार्य का प्रभाव छोड़ना होगा। 'त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः' एकमात्र त्याग के द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति होती है)। त्याग, त्याग—इसीका प्रचार अच्छी तरह करना चाहिये। त्यागी बिना हुए तेजस्विता नहीं आने की।........

बाबूराम, योगेन इतना क्यों भोग रहे हैं? शायद दीनहीन भाव की ज्वाला से। बीमारी-सीमारी सब झाड़ फेंकने कहो—घण्टे

---

† जो लोग देह को आत्मा मानते हैं, वही करुण कण्ठ से कहते हैं—हम क्षीण हैं हम दीन हैं। यह नास्तिक्य है। हमलोग जबकि अभयपद पर स्थित हैं तो हम भयरहित वीर क्यों न हों, यही आस्तिक्य है। हम रामकृष्ण के दास हैं।

संसार में आसक्ति से रहित होकर, सब कलहों की जड़ आसक्ति का त्याग करके, परम अमृत का पान करते हुए, सर्वकल्याणस्वरूप श्रीगुरु के चरणों का ध्यान कर, समस्त संसार को नतमस्तक होकर उस अमृत का पान करने के लिये बुला रहे हैं।

अनादि अनन्त वेदरूप समुद्र का मन्थन करके जो कुछ मिला है, ब्रह्मा-विष्णु-महेश-आदि देवताओं ने जिसमें अपनी शक्ति का नियोग किया है, जिसे पार्थिव नारायण कहना चाहिये अर्थात् जिसमें भगवदवतारों के प्राणों का सार पदार्थ है, श्रीरामकृष्ण अमृत के पूर्ण पात्रस्वरूप उसी देह को लेकर आये थे।

भर के भीतर सब बीमारी हट जायगी। आत्मा को भी कभी बीमारी जकड़ती है? झूठ! कहो घण्टा भर बैठकर सोचे—मैं आत्मा हूँ—मुझे फिर कैसा रोग? सब दूर हो जायगा। तुम सब सोचो—हम अनन्तबलशाली आत्मा हैं—फिर देखो, कैसा बल मिलता है। कैसा दीन भाव? मैं ब्रह्ममयी का पुत्र हूँ। कैसा रोग, कैसा भय, कैसा अभाव? दीनहीन भाव फूँक मारकर बिदा कर दो। सब अच्छा हो जायगा। 'नास्ति'का भाव न रहे, सब में 'अस्ति'का भाव चाहिये। कहो, मैं हूँ, ईश्वर हैं, और सब कुछ मुझमें है। मेरे लिये जो कुछ चाहिये—स्वास्थ्य, पवित्रता, ज्ञान—सब मैं ज़रूर अपने भीतर से उभाडूँगा। अरे ये म्लेच्छ मेरी बातें समझने लगे और तुमलोग बैठे बैठे दीन-भाव की बीमारी में कराहते हो? किसकी बीमारी?—कैसी बीमारी? झाड़ फेंको।........वीर्यमसि वीर्यं बलमसि बलम् ओजोऽसि ओजः सहोऽसि सहो मयि देहि। (तुम वीर्यस्वरूप हो, मुझे वीर्य दो; तुम बलस्वरूप हो, मुझे बल दो; तुम ओजःस्वरूप हो, मुझे ओज दो; तुम सामर्थ्यस्वरूप हो, मुझे सामर्थ्य दो।) प्रतिदिन पूजा के समय यह जो आसन-प्रतिष्ठा है—आत्मानं अच्छिद्रं भावयेत् (आत्मा को अच्छिद्र सोचना चाहिये)—इसका क्या अर्थ है? कहो—हमारे भीतर सबकुछ है—इच्छा होने ही से प्रकाशित होगा। तुम अपने मन ही मन कहो—आत्मा,—वे पूर्ण हैं, उन्हें फिर रोग कैसा? घण्टे भर के लिये दो चार दिन तक कहो तो सही, सब रोग-शोक छूट जायँगे।

साशीर्वाद,

विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

संयुक्त-राज्य, अमेरिका
२९ सितम्बर, १८९४

प्रिय आलासिंगा,

तुमने जो अखबार भेजे थे वे ठीक समय पर पहुँच गये और इस बीच में तुमने भी, अमेरिकावाले अखबारों में जो समाचार निकले हैं उनका कुछ कुछ हाल पाया होगा। अब सब ठीक हो गया है। कलकत्ते से सर्वदा पत्रव्यवहार करते रहना। बेटा, अब तक तुमने साहस दिखाकर अपने को गौरवान्वित किया। जि० जि० ने भी बहुत ही अद्भुत और सुन्दर काम किया। ऐ मेरे साहसी, निःस्वार्थ बच्चो, तुम सभी ने बड़े सुन्दर काम किये। तुम्हारी याद करते हुए मुझे बड़े गौरव का अनुभव हो रहा है। भारतवर्ष तुम्हारे लिये गौरवान्वित हो रहा है। तुम्हारा जो अखबार निकालने का संकल्प था उसे न छोड़ना। खेतड़ी के राजा तथा लिमड़ी काठियावाड़ के ठाकुर साहब जिसमें मेरे कार्य के विषय में सदा समाचार पाते रहें उसका बन्दोबस्त करना। मैं मद्रास अभिनन्दन का संक्षिप्त उत्तर लिख रहा हूँ। यदि सस्ता हो तो यहीं से छाप कर भेज दूँगा, नहीं तो टाइप कराकर भेजूँगा। भरोसा रखो, निराश मत हो। इस सुन्दर ढंग से काम होने पर भी यदि तुम निराश हो तो तुम महा मूर्ख हो। हमारे कार्य का प्रारम्भ जैसा सुन्दर हुआ, वैसा और किसी काम का होते दिखाई नहीं देता। हमारा कार्य जितना शीघ्र

भारत में और भारत के बाहर विस्तृत हो गया है, वैसे भारत के और किसी आन्दोलन को नसीब नहीं हुआ।

भारत के बाहर कोई सुनियंत्रित कार्य चलाना या सभा-समिति बनाना मैं नहीं चाहता। वैसा करने की कुछ उपयोगिता मुझे दिखाई नहीं पड़ती। भारत ही हमारा कार्यक्षेत्र है, और विदेशों मे हमारे कार्य का मूल्य यही है कि वह भारत को जगा देगा। बस। अमेरिकावाली घटनाओं ने हमें भारत में काम करने का अधिकार और सुयोग दिया है। अब भाव-विस्तार के लिये हमें दृढ़ नींव का प्रयोजन है। मद्रास और कलकत्ता—अब ये दो केन्द्र बने हैं। बहुत जल्दी भारत में और भी सैकड़ों केन्द्र बनेंगे।

यदि हो सके तो अखबार और सामयिक पत्र—दोनों ही निकालो। मेरे जो भाई चारों तरफ घूप फिर रहे हैं वे ग्राहक बनायेंगे—मैं भी बहुत ग्राहक बनाऊँगा और बीच बीच कुछ रुपया भेजूँगा। पल भर के लिये भी विचलित न होना—सब ठीक हो जायगा।

इच्छाशक्ति ही जगत को चलाती है। ऐ प्यारे, हमारे युवक ईसाई बन रहे हैं, इसलिये खेद न करना। यह हमारे ही दोष से हो रहा है। (अभी ढेरों अखबार और 'परमहंस देव की जीवनी' आई—उन्हें पढ़कर मैं फिर कलम उठाता हूँ) हमारे समाज में, विशेष कर मद्रास में, अब जैसे अन्यायपूर्ण नियम और आचार चल रहे हैं उन्हें देखते हुए बेचारे बिना क्रिस्तान हुए और कर ही क्या सकते हैं? उन्नति के लिये पहले स्वाधीनता चाहिये। तुम्हारे

पूर्वजों ने आत्मा को स्वाधीनता दी थी, इसीलिये धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि और विकास हुआ पर देह को उन्होंने सैकड़ों बन्धनों के फेर में डाल दिया, बस इसीसे समाज का विकास रुक गया। पाश्चात्य देशों का हाल ठीक इसके विपरीत है। समाज में बहुत-स्वाधीनता है—धर्म में कुछ नहीं। इसके फलस्वरूप वहाँ धर्म बड़ा ही अधूरा रह गया, परन्तु समाज ने भारी उन्नति कर ली है। अब प्राच्य समाज के पैरों से जञ्जीरें धीरे धीरे खुल रही हैं, उधर पाश्चात्य धर्म के लिये भी वैसा ही हो रहा है। तुम्हें धीरज धरना होगा और सहिष्णुता के साथ काम करते रहना होगा।

फिर प्राच्य और पाश्चात्य के आदर्श अलग अलग हैं। भारतवर्ष धर्मप्रवण या अन्तर्मुख है, पाश्चात्य बहिर्मुख। पाश्चात्य देश तनिक भी धार्मिक उन्नति सामाजिक उन्नति ही के द्वारा करना चाहते हैं, परन्तु प्राच्य देश थोड़ी सी सामाजिक शक्ति का लाभ भी धर्म ही के द्वारा करना चाहते हैं।

इसीलिये हमारे आधुनिक संस्कारकों को पहले भारत के धर्म का नाश किये बिना संस्कार का और कोई दूसरा उपाय ही नहीं सूझता। उन्होंने इसलिये कोशिश भी की है, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। इसका क्या कारण है? कारण यह कि उनमें से बहुत ही कम लोगों ने अपने धर्म का अच्छी तरह अध्ययन और आलोचना की है, और उनमें से एक ने भी उस साधना का अवलम्बन नहीं किया जो 'सब धर्मों के जनक' को समझने के लिये आवश्यक

होती है ! ईश्वर की कृपा से मैं यह समस्या हल कर चुकने का दम भरता हूँ। मेरा यही कहना है कि हिन्दू समाज की उन्नति के लिये हिन्दू धर्म के नाश की कोई आवश्यकता नहीं और यह बात नहीं कि समाज की वर्तमान दशा इसलिये हुई कि हिन्दू धर्म प्राचीन रीतिनीतियों और आचार-अनुष्ठानों का समर्थन किये रहता है, परन्तु इसलिये कि धार्मिक तत्त्वों का सभी सामाजिक विषयों में अच्छी तरह उपयोग नहीं हुआ है। मैं यह बात अपने प्राचीन शास्त्रों से सविस्तार प्रमाणित करने को तैयार हूँ। मैं यही शिक्षा दे रहा हूँ और हमें यह कार्यरूप में परिणत करने के लिये जीवन भर चेष्टा करनी होगी। पर इसमें समय लगेगा—बहुत समय और बड़ी देर तक आलोचना की इसमें आवश्यकता है। धीरज धरो और काम करते चले जाओ। 'उद्धरेदात्मनात्मानम्'—आप ही अपना उद्धार करना पड़ेगा।

मैं तुम्हारे अभिनन्दन का उत्तर देने में लगा हुआ हूँ। इसे छापने की कोशिश करना। यदि वह सम्भव न हुआ तो थोड़ा थोड़ा करके इण्डियन मिरर तथा अन्यान्य पत्रों में छपवाना।

तुम्हारा,

विवेकानन्द

पु०—वर्तमान हिन्दूसमाज केवल उन्नत आध्यात्मिक भाव-सम्पन्न जनों के लिये ही गठित है—बाकी सभी को वह निर्दयरूप

से पीस डालता है। पर जो लोग सांसारिक असार वस्तुओं—रूप रस आदि—का थोड़ा बहुत सम्भोग करना चाहते हैं वे जायँगे कहाँ? जैसे तुम्हारा धर्म उत्तम, मध्यम और अधम, सभी प्रकार के अधिकारियों को ले लेता है, वैसे ही तुम्हारे समाज को भी उच्च नीच भाववाले सभीको ले लेना चाहिये। इसका उपाय यह है कि पहले तुम्हें अपने धर्म का यथार्थ तत्त्व समझना होगा, और फिर उसे सामाजिक विषयों में लगाना पड़ेगा। यह बहुत ही धीरे धीरे होता रहेगा, पर इससे काम पक्का होगा।

वि०—

वाशिङ्गटन

२७ अक्टूबर, १८९४

प्रिय आलासिंगा,

मैं यहाँ वही काम कर रहा हूँ जो भारतवर्ष में करता था। सदा ईश्वर पर भरोसा रखना और भविष्य के लिये कोई संकल्प न करना। .... तुम्हें याद रखना चाहिये कि मुझे इस देश में निरन्तर काम करना पड़ता है और अपने विचारों को पुस्तकाकार में लिपिबद्ध करने का मुझे अवकाश नहीं है—यहाँ तक कि इस लगातार परिश्रम ने मेरे स्नायुओं को कमजोर बना दिया है और मैं इसका अनुभव भी कर रहा हूँ। तुम और मद्रासवासी सब मित्रों ने

मेरे लिये जो अत्यन्त निःस्वार्थ और वीरोचित काम किया है, इसके लिये अपनी कृतज्ञता मैं किन शब्दों में प्रकट करूँ? संघ बनाने की शक्ति मुझमें नहीं है—मेरी प्रकृति अध्ययन और ध्यान की तरफ स्वतः झुकती है। मैं सोचता हूँ कि मैं बहुत कुछ कर चुका—अब मुझे विश्राम की ज़रूरत है और मैं उनको थोड़ी बहुत शिक्षा देना चाहता हूँ जिन्हें मेरे गुरुदेव ने मुझे सौंपा है। अब तो तुम जान गये कि तुम क्या कर सकते हो, क्योंकि, हे मद्रासवासी युवको, तुम्हींने वास्तव में सब कुछ किया है; मैं तो सिर्फ चुपचाप खड़ा रहा। मैं एक त्यागी संन्यासी हूँ और मैं केवल एक ही वस्तु चाहता हूँ। मैं उस भगवान या धर्म का विश्वास नहीं करता जो न विधवाओं के आँसू पोछ सकता है और न अनाथों के मुँह में एक टुकड़ा रोटी ही पहुँचा सकता है। किसी धर्म के सिद्धान्त कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, मैं उसे तब तक धर्म नहीं मानता हूँ जब तक वह कुछ ग्रन्थों और मतों तक ही परिमित है। हमारी आँखें सामने की तरफ हैं—पीछे नहीं। सामने बढ़ते रहो और जिसे तुम अपना धर्म कह कर गौरव का अनुभव करते हो उसे कार्यरूप में परिणत करो। ईश्वर तुमको आशीर्वाद देंगे।

मेरी ओर मत ताको, अपनी ओर देखो। मुझे इस बात का आनन्द है कि मैं ज़रा सा उत्साह संचार करने का साधन बना। इससे लाभ उठाओ, इसीके सहारे बह चलो, बस तभी सब कुछ ठीक हो जायगा। बेटा, प्रेम कभी निष्फल नहीं होता; कल हो चाहे परसों, या युगों के बाद, पर सत्य की जय अवश्य होगी। प्रेम ही

मैदान मार लेगा। क्या तुम अपने भाई—मनुष्यजाति—को प्यार करते हो? ईश्वर को फिर कहाँ ढूँढ़ने चले हो,—ये सब गरीब, दुःखी, दुबले मनुष्य क्या ईश्वर नहीं हैं? इन्हींकी पूजा पहले क्यों नहीं करते? गङ्गातट पर फिर कुआ खोदने की चेष्टा क्यों? प्रेम की असाध्य-साधिनी शक्ति पर विश्वास करो। इस झूठी जगमगाहटवाली नाम-यश की परवा कौन करे? समाचार-पत्रों में क्या छपता है क्या नहीं, उसकी मैं कभी खबर ही नहीं लेता हूँ। क्या तुम्हारे पास प्रेम है? तब तो तुम सर्वशक्तिमान हो। क्या तुम सम्पूर्ण निःस्वार्थ हो? तो फिर तुम्हें कौन रोक सकता है? चरित्र ही की सर्वत्र विजय होती है। समुद्र की तह में भी भगवान ही अपनी सन्तानों की रक्षा करते हैं। तुम्हारे देश के लिये वीरों की जरूरत है—वीर बनो।

सब लोग मुझे भारत लौटने को कहते हैं। वे सोचते हैं कि मेरे लौटने पर अधिक काम हो सकेगा। मित्र, वे भूलते हैं। इस समय वहाँ जो जोश पैदा हुआ है वह तनिक देशप्रेम भर है। उसका कुछ मूल्य नहीं। यदि वह सच और यथार्थ निकलेगा तो बहुत शीघ्र देखोगे कि सैकड़ों वीर सामने आकर उस कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं। अतएव जान लो कि वास्तव में तुम्हींने सब कुछ किया है, और आगे चलो। मेरे भरोसे मत रहो। विस्तृत कार्यक्षेत्र सामने पड़ा है। धार्मिक मत-मतान्तरों से मुझे क्या काम? मैं तो ईश्वर का दास हूँ, और सब प्रकार के उच्च भावों के विस्तार के लिये इस देश से अच्छा क्षेत्र मुझे कहाँ मिलेगा? यहाँ तो यदि एक आदमी मेरे विरुद्ध रहा तो सौ आदमी मेरी सहायता करने को तैयार हैं; सबसे

अच्छी जगह यही है जहाँ मनुष्य मनुष्य से सहानभूति रखता है और जहाँ स्त्रियाँ देवियाँ हैं। प्रशंसा मिलने पर मूर्ख भी खड़ा हो सकता है और कायर भी साहसी का सा डौल दिखा सकता है, पर तभी जब कि सब कामों का परिणाम शुभ होना निश्चित है, लेकिन सच्चा वीर चुपचाप काम करता जाता है। एक बुद्ध के प्रकट होने के पूर्व कितने चुपचाप गुजर गए! बेटा, मुझे ईश्वर पर विश्वास है, और मनुष्य पर भी। दुःखी लोगों की मदद करने में मैं विश्वास करता हूँ और दूसरों को बचाने के लिये मैं जहन्नुम तक जाना अच्छा समझता हूँ। अगर पाश्चात्यवालों की बात कहो तो उन्होंने मुझे भोजन और आश्रय दिया, मुझसे मित्र का सा व्यवहार किया और मेरी रक्षा की—यहाँ तक कि अत्यन्त कट्टर ईसाई लोगों ने भी। परन्तु हमारी जाति उस समय क्या करती है जब इनका कोई पादड़ी भारतवर्ष में जाता है? तुम उसको छूते तक नहीं—वे तो म्लेच्छ हैं! प्यारे, कोई मनुष्य, कोई जाति, दूसरों से घृणा करते हुए जी तक नहीं सकती। भारत के भाग्य का निपटारा उसी दिन हो चुका जब उसने इस म्लेच्छ शब्द को ढूँढ़ निकाला, दूसरों से अपना नाता तोड़ दिया। खबरदार जो तुमने इस भाव की पुष्टि की! वेदान्त की बातें बघारना तो खूब सरल है पर इसके छोटे से छोटे सिद्धान्तों को काम में लाना कितना कठिन है!

साशीर्वाद तुम्हारा,

विवेकानन्द

पु०—इन दो चीज़ों से बचे रहना—सत्ताप्रियता और ईर्ष्या। सदा आत्मविश्वास का अभ्यास करना।

(राजा प्यारी-मोहन मुखर्जी को *)

न्यूयार्क,

१८ नवम्बर १८९४

प्रिय महाशय,

कलकत्ता टाउन हॉल की सभा में हाल ही में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए उनके साथ, मेरे अपने नगर-निवासियों ने जिन सुहावने शब्दों में मुझे याद किया है उन्हें मैंने पढ़ा है।

महाशय, मेरी तुच्छ सी सेवा के लिये आपने जो आदर प्रकट किया है उसके लिये आप मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार किजिये।

मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि कोई भी मनुष्य या जाति अपने को दूसरों से अलग रखकर जी नहीं सकती, और जब कभी गौरव, नीति या पवित्रता की भ्रान्त धारणा से ऐसा प्रयत्न किया गया तब उसका परिणाम उस जुदा होनेवाले पक्ष के लिये सदैव घातक निकला।

---

* स्वामीजी ने अमेरिका में हिन्दू धर्म के प्रचार से जो अच्छा काम किया था उसे अभिनन्दित करने के लिये कलकत्ता टाउन हॉल में एक सार्वजनिक सभा हुई थी। यह पत्र उसीके सभापति को लिखा गया था।

मेरी समझ में भारतवर्ष के पतन और अवनति का एकमात्र मुख्य कारण जाति के चारों ओर रीति-रिवाजों की एक दीवार खड़ी कर देना ही था, जिसकी भित्ति दूसरों की घृणा पर स्थापित थी, और जिसका यथार्थ उद्देश्य प्राचीन काल में हिन्दू-जाति को आसपास-वाली बौद्ध जातियों के संसर्ग से अलग रखना था।

प्राचीन या नवीन तर्कजाल इसे चाहे जिस तरह ढाकने का प्रयत्न करे, पर इसका अनिवार्य फल—उस नैतिक साधारण नियम की सिद्धि, कि कोई भी बिना अपने को अधःपतित किये दूसरों से घृणा नहीं कर सकता—यह हुआ कि जो जाति सभी प्राचीन जातियों में सर्वश्रेष्ठ थी उसका नाम पृथ्वी की जातियों में एक घृणा-सूचक साधारण शब्द सा हो गया है। हम उस सार्वभौमिक नियम की अवहेलना के परिणाम के प्रत्यक्ष दृष्टान्तस्वरूप हो गये हैं जिसका हमारे ही पूर्वजों ने पहले पहल आविष्कार और विवेचन किया था।

लेन-देन ही संसार का नियम है और यदि भारत फिर से उठना चाहे तो यह परमावश्यक है कि वह अपने रत्नों को बाहर लाकर पृथ्वी की जातियों में बिखेर दे, और इसके बदले में वे जो कुछ दे सकें उसे सहर्ष ग्रहण करे। विस्तार ही जीवन है और संकोच मृत्यु। प्रेम ही जीवन है और घृणा मृत्यु। हमने उसी दिन से मरना शुरू किया जब से हम अन्यान्य जातियों से घृणा करने लगे, और यह मृत्यु बिना इसके किसी दूसरे उपाय से रुक नहीं सकती कि हम फिरसे विस्तार को अपनायें जो कि जीवन है।

अतएव हमें संसार की सभी जातियों से मिलना पड़ेगा। और प्रत्येक हिन्दू जो सैर करने को विदेश जाता है, उन सैकड़ों मनुष्यों से अपने देश को अधिक लाभ पहुँचाता है जो सिर्फ कुसंस्कार और स्वार्थपरता की समष्टि हैं और जिनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य, 'न खाय, न खाने दे' कहावत के अनुसार, न अपना हित करना है, न पराये का। पाश्चात्य जातियों ने जातीय जीवन के जो आश्चर्य-जनक प्रासाद बनाये हैं वे चरित्ररूपी मजबूत खम्भों पर खड़े हैं, और जब तक हम बहुसंख्यक वैसे चरित्र न गढ़ सकें तब तक हमारे लिये किसी शक्ति-विशेष के विरुद्ध अपना असन्तोष प्रकट करते रहना निरर्थक है।

क्या वे लोग स्वाधीनता पाने योग्य हैं जो दूसरों को वह देने के लिये तैयार नहीं? व्यर्थ का असन्तोष जताते हुए शक्तिक्षय करने के बदले हम चुपचाप और मर्दानगी के साथ काम करते चले जायँ। मैं तो पूरा विश्वास रखता हूँ कि संसार की कोई भी शक्ति किसीसे वह चीज़ अलग नहीं रख सकती जिसके लिये वह सचमुच योग्य हो। अतीत तो हमारा गौरवमय था ही, पर मुझे हार्दिक विश्वास है कि भविष्य और भी गौरवमय होगा।

शंकर हमें पवित्रता, धैर्य और अध्यवसाय में अविचलित रखे।

भवदीय,

विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को*)

न्यूयार्क,

१९ नवम्बर, १८९४

ऐ वीर युवको,

तुम्हारा गत ११ अक्टूबर का पत्र कल पाकर बड़ा ही आनन्द हुआ। यह बड़े सन्तोष की बात है कि अबतक हमारा कार्य बिना रोकटोक के उन्नति ही करता चला आ रहा है। जैसे हो सके हमें संघ को दृढ़-प्रतिष्ठ और उन्नत बनाना होगा और इसमें हमें सफलता मिलेगी,—अवश्य मिलेगी। 'नहीं' कहने से न बनेगा। और किसी बात की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है केवल प्रेम, अकपटता और धैर्य की। जीवन का अर्थ ही वृद्धि, अर्थात् विस्तार, यानी प्रेम है। इसलिये प्रेम ही जीवन है, यही जीवन का एकमात्र गतिनियामक है, और स्वार्थपरता ही मृत्यु है। लोक परलोक में यही बात सत्य है। यदि कोई कहे कि देह के विनाश के पीछे और कुछ नहीं रहता तो भी उसे यह मानना ही पड़ेगा कि स्वार्थपरता ही यथार्थ मृत्यु है।

परोपकार ही जीवन है, परोपकार न करना ही मृत्यु है। जितने नरपशु तुम देखते हो उनमें नब्बे फी सदी मृत हैं, वे प्रेत हैं; क्योंकि, ऐ बच्चो, जिसमें प्रेम नहीं है वह तो मृतक है। ऐ बच्चो, सबके लिये

* श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल आदि मद्रासी भक्तों को लिखित।

तुम्हारे दिल में दर्द हो—गरीब, मूर्ख, पददलित मनुष्यों के दुःख का तुम अनुभव करो, समवेदना से तुम्हारे हृदय की क्रिया रुक जाय, मस्तिष्क चकराने लगे, तुम्हें ऐसा प्रतीत हो कि हम पागल तो नहीं बन रहे हैं। फिर ईश्वर के चरणों में अपना दिल खोल दो, तभी शक्ति, सहायता और अदम्य उत्साह तुम्हें मिल जायगा। गत दश वर्ष से मैं कहता आया हूँ कि कोशिश करते रहो। और अब भी मैं कहता हूँ कि कोशिश करते जाओ। जब चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दीखता था तब मैं कहता था—कोशिश करते रहो; अब तो ज़रा ज़रा उजाला हो रहा है, पर अब भी मैं कहता हूँ कि कोशिश करते जाओ। बच्चो, डरो मत। अनन्त नक्षत्र-खचित आकाश की ओर उस भयभीत दृष्टि से मत ताको कि वह हमें कुचल डालेगा। धीरज धरो। फिर तो देखोगे कि कई घण्टों में वह सब-का-सब तुम्हारे पैरों तले आ गया है। धीरज धरो, न धन से काम होता है, न नाम से; न यश काम आता है, न विद्या; प्रेम ही से सब कुछ होता है। चरित्र ही कठिनाइयों की संगीन दीवारें तोडकर अपना रास्ता बना लेता है।

अब हमारे सामने यह समस्या है। बिना स्वाधीनता के उन्नति हो ही नहीं सकती। हमारे पूर्वजों ने धार्मिक चिन्ता को स्वाधीनता दी थी और उसीसे हमें एक आश्चर्यजनक धर्म मिला है, पर उन्होंने समाज के पैर बड़ी बड़ी ज़ंजीरों से जकड़ दिये और इसके फलस्वरूप हमारा समाज, थोडे शब्दों में, भयंकर और पैशाचिक हो गया।

पाश्चात्य देशों में समाज को सदैव स्वाधीनता मिलती रही, उनको अब तो जरा देखो। इसके अलावा उनके धर्म को भी देखो।

उन्नति की पहली शर्त स्वाधीनता है। जैसे मनुष्य को विचारने और बोलने की स्वाधीनता मिलनी चाहिये वैसे ही उसे खान-पान, पोशाक-पहनावे, ब्याह-शादी हरएक बात में स्वाधीनता मिलनी चाहिये, जब तक कि यह दूसरों को हानि न पहुँचाये।

हम मूर्खों की तरह भौतिक सभ्यता की निन्दा किया करते हैं। अंगूर खट्टे हैं न! उस मूर्खोचित बात को मान लेने पर भी यह कहना पड़ेगा कि सारे भारतवर्ष में एक ही लाख यथार्थ धार्मिक नरनारी हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या इतने लोगों की धार्मिक उन्नति के लिये भारत के तीस करोड़ अधिवासियों को बर्बरों का सा जीवन व्यतीत करना और भूखों मरना होगा? क्यों एक भी आदमी भूखों मरे? मुसलमानों के लिये हिन्दुओं को जीतना कैसे सम्भव हुआ? हिन्दुओं का भौतिक सभ्यता का निरादर करना ही इसका कारण था। सिले हुए कपड़े तक पहिनना मुसलमानों ने इन्हें सिखलाया। क्या अच्छा होता यदि हिन्दू मुसलमानों से साफ ढङ्ग से खाने की तरकीब सीख लेते जिसमें रास्ते का गर्द भोजन के साथ न मिलने पाता! भौतिक सभ्यता, नहीं नहीं, भोगविलास की भी ज़रूरत होती है—क्योंकि उससे गरीबों को काम मिलता है। अन्न! अन्न! मुझे इस बात का विश्वास नहीं है कि वह भगवान जो मुझे यहाँ पर अन्न नहीं दे सकता, स्वर्ग में मुझे अनन्त सुख देगा। राम

कहो। भारत को उठाना होगा, गरीबों को खिलाना होगा, शिक्षा का विस्तार करना होगा और पौरोहित्य की बुराइयों को ऐसा धक्का देना होगा कि वे चकराती हुई एकदम ऐटलान्टिक महासागर में जा गिरें। ब्राह्मण हो या संन्यासी—किसीकी बुराई को क्षमा न मिलनी चाहिये। पौरोहित्य की बुराइयों और सामाजिक अत्याचारों का कहीं नाम निशान न रहे। सबके लिये अन्न अधिक सुलभ हो जाय और सबको अधिकाधिक सुभीता मिलता रहे। हमारे मूर्ख नौजवान अंगरेजों से अधिक क्षमता पाने के लिये सभाएँ बुलाते हैं। इस पर वे सिर्फ हँस देते हैं। स्वाधीनता पाने का अधिकार उसे नहीं जो औरों को स्वाधीनता देने को तैयार न हो। मान लो कि अंगरजों ने तुम्हें सब क्षमता अर्पण कर दी—पर उससे क्या फल होगा? कोई-न-कोई सम्प्रदाय प्रबल होकर सब लोगों से सारी क्षमता छीन लेगा और पौरोहित्य-शक्ति को घूस देकर लोगों को दबाने को कहेगा और स्वयं भी उनका गला काटेगा। गुलाम तो शक्ति चाहता है—दूसरों को गुलाम बनाने के लिये।

अब यह दशा धीरे धीरे लानी पड़ेगी—अपने धर्म पर अधिक ज़ोर देकर और समाज को स्वाधीनता देकर यह करना होगा। प्राचीन धर्म से पौरोहित्य की बुराइयों को उखाड़ दो, तभी तुम्हें संसार का सबसे अच्छा धर्म मिल जायगा। मेरी बात समझते हो? भारत का धर्म लेकर एक यूरोपीय समाज गढ़ सकते हो? मुझे विश्वास है कि यह सम्भव है और एक दिन अवश्य होगा।

इसके लिये सबसे अच्छा उपाय मध्य-भारत में एक उपनिवेश की स्थापना करना जहाँ वे ही लोग रहेंगे जो तुम्हारे विचारों को मानेंगे। फिर ये ही मुट्ठीभर लोग सारे संसार में अपने विचार फैला देंगे। इसलिये धन की आवश्यकता है सही, पर यह धन आ ही जायगा। इस बीच में एक केन्द्रस्थानी समिति बनाओ और भारत भर में उसकी शाखाएँ खोलते जाओ। अब केवल धर्मभित्ति पर इसकी स्थापना करो और अभी अभी किसी उथल-पुथल मचानेवाले सामाजिक सुधार का प्रचार मत करो। सिर्फ किसी मूर्खता-प्रसूत कुसंस्कारों को सहारा न देना। जैसे पूर्वकाल में रामानुज ने सब को समान समझकर मुक्ति में सबका समान अधिकार घोषित किया था वैसे ही समाज को पुनः गठित करने की कोशिश करो। रामानुज, चैतन्य आदि नामों के सहारे से प्रचारित होने पर लोग इन बातों को जल्दी ले लेते हैं। उसके साथ ही नगर-संकीर्तन आदि का भी प्रबन्ध करो।

कल्पना करो कि पहले समिति खोलते समय तुमने एक महोत्सव किया। झण्डे आदि लेकर रास्तों में घूमते हुए नगरकीर्तन किया, फिर व्याख्यानादि हुए। इसके बाद, सप्ताह में एक बार, या इससे अधिक, समिति के अधिवेशन होते रहे। उत्साह से हृदय भर लो और सब जगह फैल जाओ। काम करो, काम करो। नेतृत्व करते समय सब के दास हो जाओ, निःस्वार्थ हो, और कभी एक मित्र को पीठ पीछे दूसरे की निन्दा करते मत सुनो। अनन्त धैर्य रखो तभी सफलता तुम्हारे हाथ आयेगी।

भारत के कोई अखबार या पते और मुझे भेजने की आवश्यकता नहीं। मेरे पास उनके ढेर जमा हो गये, अब बस करो। अब इतना ही समझो कि जहाँ जहाँ तुम कोई सार्वजनिक सभा बुला सके वहीं काम करने का तुम्हें थोड़ा मौका मिल गया। उसीके सहारे काम करो। काम करो; काम करो, औरों के हित के लिये काम करना ही जीवन का लक्षण है। मैंने मि. आयर को अलग पत्र नहीं लिखा, पर अभिनन्दन-पत्र का जो उत्तर मैंने दिया शायद वही पर्याप्त हो। उनसे और मेरे अन्यान्य मित्रों से मेरा हार्दिक प्रेम, सहानुभूति और कृतज्ञता ज्ञापन करना। वे सभी महानुभाव हैं। हाँ, एक बात पर सतर्क रहना। दूसरों पर अपना रोब जमाने की कोशिश मत करो। मैं सदा तुम्हींको पत्र भेजता हूँ—इसलिये तुम मेरे अन्यान्य मित्रों से अपना अधिक महत्त्व जाहिर करने की फिक्र में न रहना। मैं जानता हूँ कि तुम इतने निर्बोध न होगे, पर तोभी मैं तुम्हें सतर्क कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। सब संगठनों का सत्यानास इसीसे होता है।

मैं चाहता हूँ कि हममें कोई कपटता, कोई दुरङ्गी चाल, कोई दुष्टता न रहे। मैं सदैव प्रभु पर निर्भर रहा हूँ—सत्य पर निर्भर रहा हूँ जो कि दिन के प्रकाश की भाँति उज्ज्वल है। मरते समय मेरी विवेक-बुद्धि पर यह धब्बा न रहे कि मैंने नाम या यश पाने के लिये, यहाँ तक कि परोपकार करने के लिये दुरङ्गी चालों से काम लिया था। दुराचार की गन्ध या बदनियती का नाम तक न रहने पाए।

कोई टालमटोल, कोई छिपे तौर से बदमाशी, कोई गुप्त शठता न रहे—पर्दे की आड़ में कुछ न किया जाय। कोई गुरु का विशेष कृपापात्र होने का दावा न करे—यहाँ तक कि हममें कोई गुरु भी न रहे। मेरे साहसी लड़को, आगे बढ़ो—चाहे अर्थ आये या न आये, आदमी मिलें या न मिलें, क्या तुम्हारे पास प्रेम है? क्या तुम्हें ईश्वर पर भरोसा है? बस, आगे बढ़ो, छलांग मारकर टूटी दीवार पर खड़े हो जाओ—तुम्हें कोई न रोक सकेगा।

एक थियोसफिस्ट पत्र में लिखता है कि थियोसफिस्टों ने ही मेरी सफलता की राह साफ कर दी थी। ऐसा! यह सरासर फजूल बात है—थियोसफिस्टों ने मेरी राह साफ की!

सतर्क रहो! जो कुछ असत्य है उसे पास न फटकने दो। सत्य पर डटे रहो, बस तभी हम सफल होंगे। इसमें ज़रा देर हो भी तोभी सफल हम अवश्य होंगे। इस तरह काम करते जाओ कि मानो मैं कभी था ही नहीं। ऐसे काम करो कि मानो तुममें से हरएक के ऊपर सारा काम निर्भर है। पचास सदियाँ तुम्हारी ओर ताक रही हैं—भारत का भविष्य तुम पर निर्भर है! काम करते जाओ।

इंग्लैण्ड से अक्षय का एक सुन्दर पत्र मुझे मिला था। पता नहीं कि कब मैं देश लौटूँगा। यहाँ काम करने का बड़ा अच्छा क्षेत्र है। भारत में लोग अधिक से अधिक मेरी प्रशंसा भर कर सकते हैं—पर वे किसी काम के लिये एक पैसा भी न देंगे और

दें भी तो कहाँ से? वे स्वयं भिखारी हैं न? फिर गत दो हजार या उससे भी अधिक वर्षों से वे परोपकार करने की वृत्ति ही खो बैठे हैं। 'जाति' 'जनसाधारण' इत्यादि के भाव वे अभी अभी सीख रहे हैं। इसलिये मुझे उनकी कोई शिकायत नहीं करनी है। आगे और भी सविस्तार लिखूँगा। तुम्हें अनन्त काल के लिये आशीर्वाद।

तुम्हारा,

विवेकानन्द

पु०—तुम्हें फोनोग्राफ के बारे में और पूछताछ करने का कोई प्रयोजन नहीं। अभी खेतड़ी से मुझे खबर मिली कि वह अच्छी दशा में वहाँ पहुँच गया है।

—वि०

(डॉ. नाञ्जुन्दाराव को)

युक्तराज्य, अमेरिका,

३० नवम्बर, १८९४

प्रिय,

तुम्हारा सुन्दर पत्र मुझे अभी अभी मिला। तुम श्रीरामकृष्ण को समझ सके, यह जानकर मुझे बड़ा हर्ष है। तुम्हारे तीव्र वैराग्य से मुझे और भी आनन्द मिला। ईश्वरप्राप्ति का यही एक

आवश्यक अंग है। पहले ही से मुझे मद्रास से बड़ी आशा थी, और अभीतक विश्वास है कि मद्रास से वह आध्यात्मिक तरंग उठेगी जो सारे भारत को प्लावित कर देगी। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि ईश्वर तुम्हारे शुभ संकल्पों का वेग उत्साह के साथ बढ़ाते रहें; परन्तु बेटा, यहाँ कठिनाइयाँ भी हैं। पहले तो किसी मनुष्य को शीघ्रता नहीं करनी चाहिये; दूसरे, तुम्हें अपनी माता और स्त्री के सम्बन्ध में सहृदयतासूचक विचारों से काम लेना उचित है। सच है, तुम कह सकते हो कि आप रामकृष्ण के शिष्यों ने संसार-त्याग करते समय अपने मातापिता की सम्मति की अपेक्षा नहीं की। मैं जानता हूँ और ठीक जानता हूँ—बड़े बड़े काम बिना बड़े स्वार्थत्याग के नहीं हो सकते। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, भारतमाता अपनी उन्नति के लिये अपनी श्रेष्ठ सन्तानों की बलि चाहती हैं, और यह मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि तुम उन्हींमें से एक सौभाग्यशाली होगे।

संसार के इतिहास से तुम जानते हो कि महापुरुषों ने बड़े बड़े स्वार्थत्याग किये, और उनके शुभ फल का भोग जनता ने ही किया। अगर तुम अपनी ही मुक्ति के लिये सब कुछ छोड़ना चाहते हो तो यह कुछ नहीं है। क्या तुम संसार के कल्याण के लिये अपनी मुक्तिकामना तक छोड़ने को तैयार हो? तुम स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो, इस पर विचार करो। मेरी सम्मति में तुम्हें कुछ दिनों के लिये ब्रह्मचारी बनकर रहना चाहिये। अर्थात् कुछ काल के लिये स्त्रीसंगवर्जन करके अपने पिता के घर में ही रहो; यही 'कुटीचक'

अवस्था है। संसार की हितकामना पर अपने महान स्वार्थत्याग के सम्बन्ध में अपनी पत्नी को सहमत करने की चेष्टा करो। अगर तुममें ज्वलन्त विश्वास, सर्वविजयिनी प्रीति और सर्वशक्तिमयी शुद्धि हैं तो तुम्हारे शीघ्र सफल होने में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं। शरीर, मन और अपने प्राणों का उत्सर्ग करके श्रीरामकृष्ण की शिक्षाओं का विस्तार करते जाओ, क्योंकि कर्म पहला सोपान है। खूब मन लगाकर संस्कृत का अध्ययन करो और साधना का भी अभ्यास करते रहो। कारण, तुम्हें मनुष्यजाति का श्रेष्ठ शिक्षक होना है। हमारे गुरुदेव कहते थे, कोई आत्महत्या करना चाहे तो वह नहरनी ही से काम चला सकता है, परन्तु दूसरों को मारना हो तो तोपतलवार की ज़रूरत होती है। समय आने पर तुम्हें वह अधिकार प्राप्त हो जायगा जब तुम संसार में चारों और उनके पवित्र नाम का प्रचार करोगे। तुम्हारा संकल्प शुभ और पवित्र है। ईश्वर तुम्हें उन्नत करें परन्तु तुम तेजी से चलने का इरादा न रखो। पहले कर्म और साधना द्वारा अपने को पवित्र करो।

भारत चिरकाल से दुःख उठा रहा है; सनातम धर्म मुद्दतों से अत्याचारपीड़ित है। परन्तु ईश्वर दयामय हैं—वे फिर अपनी सन्तानों के परित्राण के लिये आये हैं—फिर पतित भारत को उठने का सुयोग मिला है। श्रीरामकृष्ण के पदप्रान्त पर बैठने पर ही भारत का उत्थान हो सकता है। उनकी जीवन और उनकी शिक्षाओं को चारों ओर फैलाना चाहिये,—हिन्दूसमाज के अंग में—रोम रोम में

उन्हें भरना चाहिये। यह कौन करेगा? श्रीरामकृष्ण की पताका हाथ में लेकर संसार की मुक्ति के लिये विचरण करनेवाला है कोई? नाम और यश, ऐश्वर्य और भोग का, यहाँतक कि इहलोक और परलोक की सारी आशाओं का बलिदान करके अवनति का प्रवाह रोकनेवाला है कोई? कुछ इनेगिने युवक इस पुराने किले के जीर्ण खण्ड में कूद पड़े हैं, उन्होंने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया है। परन्तु इनकी संख्या थोड़ी है। हम चाहते हैं कि ऐसे ही मनुष्य कई हज़ार हो जायँ। वे आयें, उनका स्वागत है। मुझे हर्ष है कि हमारे प्रभु ने तुम्हारे मन में उन्हींमे से एक होने के भाव भरे। उसे धन्यवाद है जिसे प्रभु ने चुन लिया। तुम्हारा संकल्प शुभ है, तुम्हारी आशाएँ उच्च हैं, घोर अन्धकार में डूबे हुए हज़ारों मनुष्यों को प्रभु के ज्ञानालोक के सामने करनेवाला तुम्हारा लक्ष्य संसार के सब लक्ष्यों से महान है।

परन्तु वत्स, इस मार्ग में बाधाएँ भी हैं। जल्दबाज़ी से कोई काम नहीं होता। पवित्रता, धैर्य और अध्यवसाय, इन्हीं तीनों गुणों से सफलता मिलती है, और सबसे बढ़कर है प्रेम। तुम्हारे सामने अनन्त समय है, अतएव अनुचित शीघ्रता आवश्यक नहीं। यदि तुम पवित्र और निष्कपट हो तो सब काम ठीक हो जायँगे। हमें तुम्हारे जैसे हज़ारों की ज़रूरत है जो समाज पर आक्रमण करें और जहाँ कहीं वे जायँ, वहीं नये जीवन और नयी शक्ति का संचार कर दें। ईश्वर तुम्हें उन्नत करें।

शुभैषी,
विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को)

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय।

१८९४, ग्रीष्मकाल।

प्रिय राखाल,

तुम्हारे पत्रों से सब समाचार विदित हुए। बलराम बाबू की स्त्री का शोक-संवाद पढ़कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। प्रभु की इच्छा। यह कार्यक्षेत्र है, भोगभूमि नहीं, काम हो जाने पर सभी घर जायेंगे—कोई आगे, कोई पीछे। फकीर चला गया है, प्रभु की इच्छा। महोत्सव बड़ी धूम से समाप्त हुआ, अच्छी बात है। उनके नाम का जितना ही विस्तार हो, उतना ही अच्छा है। परन्तु एक बात है : महापुरुष खास कर शिक्षा देने के लिये आते हैं, नाम के लिये नहीं। परन्तु उनके चेले उनके उपदेशों को बाढ़ के पानी में बहाकर नाम के लिये हाथापाई करने लग जाते हैं—बस यही संसार का इतिहास है। लोग उनका नाम लें या न लें, इसकी मुझे ज़रा भी परवा नहीं, केवल उनके उपदेश, जीवन और शिक्षाएँ जिस उपाय से संसार में प्रचारित हों, उसीके लिये प्राणों का होम कर प्रयत्न करता रहूँगा। मुझे बड़ा भय ठाकुरद्वारे का है। ठाकुरद्वारा बात बुरी नहीं, परन्तु उसीको यथासर्वस्व समझकर पुराने फैशन का वाहियात काम कर डालने की जो एक वृत्ति है उसीसे मैं डरता हूँ। मैं जानता हूँ, क्यों पुरानी जीर्ण अनुष्ठान-पद्धतियों को लेकर

वे इतना व्यस्त हो रहे हैं। उनकी अन्तरात्मा काम चाहती है, बाहर जाने का कोई दूसरा रास्ता नहीं—इसीलिये घण्टी हिलाकर सारी शक्ति गँवा रहे हैं।

तुझे एक नयी युक्ति बताऊँ। अगर काम में ला सके तो समझूँ, तुम सब मर्द हो, और काम आओगे। सब मिलकर एक कार्यक्रम ठीक करो। कुछ कैमेरा, थोड़े से मैप (नक्शे,) ग्लोब (संसार-चित्र), कुछ रासायनिक पदार्थ आदि हों। फिर छप्पर के एक बड़े घर की ज़रूरत है। इसके बाद कुछ गरीबों को इकट्ठा कर लेना चाहिये। फिर उन्हें ज्योतिष, भूगोल आदि के चित्र दिखलाओ और उन्हें श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के उपदेश सुनाओ। किस देश में क्या होता है, क्या हो रहा है, यह दुनिया क्या है, आदि बातों पर जिससे उनकी आँखें खुलें ऐसी चेष्टा करो। वहाँ जितने गरीब मूर्ख रहते हों, सुबह-शाम उनके घर जा जाकर उनकी आँखें खोल दो। पोथी-पत्रों का काम नहीं—जबानी शिक्षा दो। फिर धीरे धीरे अपने केन्द्र बढ़ाते जाओ—कर सकते हो? —या सिर्फ घण्टी हिलाना ही आता है?

तारकदादा की बातें मद्रास से सब मालूम हो गईं। वे उन पर बड़ी ही प्रीति रखते हैं। तारकदादा तुम अगर कुछ दिन मद्रास में जाकर रहो तो बड़ा काम हो। परन्तु पहले इस कार्य का श्रीगणेश कर जाओ। स्त्री-भक्त जितनी हैं, क्या विधवाओं को चेली नहीं बना सकतीं? और तुमलोग उनके मस्तिष्क में कुछ विद्या भर नहीं

सकते ! इसके बाद उन्हें घर घर में श्रीरामकृष्ण की उपासना कराने और साथ ही पढ़ाने-लिखाने के लिये भेज नहीं सकते ? ....

उठकर काम में लग जाओ तो सही। अजी, गप्पें लड़ाने और घण्टी हिलाने का जमाना गया, समझे ? अब काम करना होगा। ज़रा देखूँ भी बंगाली के धर्म की दौड़ कहाँ तक होती है। निरञ्जन ने लाटू के लिये गर्म कपड़े माँगे हैं। यहाँवाले गर्म कपड़े योरप और भारत से मँगाते हैं। जो कपड़े यहाँ खरीदूँगा, वही कलकत्ते में चौथाई कीमत में मिलेंगे। .... नहीं मालूम, कब योरप जाऊँगा। मेरा सब कुछ अनिश्चित है,—यहाँ एक तरह चल रहा है, बस यहीं तक।

यह बड़ा मज़ेदार देश है। गर्मी पड़ रही है,—आज सुबह को हमारे देश की वैशाख की गर्मी है तो अभी माघ का इलाहाबाद जैसा जाड़ा। चार ही घण्टे में इतना परिवर्तन! यहाँ के होटलों की बात क्या लिखूँ! न्यूयार्क में एक होटेलमहाराज हैं जहाँ ५०००)रुपये तक रोज़ घर किराया है, खाने का खर्च अलग! भोग-विलास का ऐसा देश योरप में भी नहीं है। यह देश संसार में सब से धनी है—रुपये गिटकौरी की तरह खर्च होते हैं। मैं शायद ही कभी होटल में रहता हूँ। ....अब देश भर के आदमी मुझे जानते हैं अतएव जहाँ कहीं जाता हूँ, लोग मुझे आगे होकर लेते और अपने घर में टिकाते हैं। शिकागो में मि० हेल का घर मेरा केन्द्र है; उनकी पत्नी को मैं माँ कहता हूँ; उनकी लड़कियाँ मुझे

दादा कहती हैं। ऐसा महा पवित्र और दयालु परिवार मैं तो दूसरा नहीं देखता। अरे भाई, अगर ऐसा न होता तो इन पर भगवान की ऐसी कृपा कैसे होती? कितनी दया है इन लोगों में! अगर खबर मिली कि एक गरीब उस जगह बड़े कष्ट में पड़ा हुआ है, तो बस स्त्री-पुरुष चल पड़े उसे भोजन और वस्त्र देने के लिये, किसी काम में लगा देने के लिये! और हमलोग क्या करते हैं!

ये लोग गरमियों में घर छोड़कर विदेश अथवा समुद्र के किनारे चले जाते हैं। मैं भी किसी जगह जाऊँगा, परन्तु अभी स्थिर नहीं किया। और सब बातें जिस तरह अंगरेजों में दीख पड़ती हैं, वैसी ही हैं। पुस्तकें आदि हैं सही, पर कीमत बहुत ज्यादा है; वही कीमत लगाने पर कलकत्ते में इसकी पंचगुनी चीज़ें मिलती हैं अर्थात् यहाँ वाले विदेशी माल यहाँ आने नहीं देना चाहते। बड़ा महसूल लगा देते हैं, इसीलिये सब चीज़ें आग के मोल बिकने लगती हैं। और यहाँवाले, विशेष कुछ कपड़ेलत्ते नहीं बुनते—ये कल औजार आदि बनाते हैं और गेहूं, रुई आदि पैदा करते हैं, यही बस यहाँ सस्ते समझो।

एक अच्छी बात याद आई। फल बहुत मिलते हैं—केले, सन्तरे, अमरूद, सेब, बादाम, किसमिस, अंगूर खूब मिलते हैं। और भी बहुत से फल कैलीफोर्निया से आते हैं। अन्नानास भी बहुत हैं—परन्तु आम, लीची आदि नहीं मिलते।

एक तरह का साग है, उसे Spinach कहते हैं, जिसे पकाने पर हमारे देश के चौराई के साग की तरह खाने में लगता है, और

जिन्हें ये लोग Asparagus कहते हैं, वे ठीक 'डेंगो' (मर्सा) के डंटल की तरह लगते हैं, परन्तु गोपाल की माँ की 'चच्चड़ी' * यहा नहीं है। उर्द की या दूसरी कोई दाल यहाँ नहीं मिलती, यहाँवाले जानते भी नहीं। भात है, पावरोटी है, यहाँवालों का खाना फरासीसियों का सा है। दूध है, दही कभी कभी, मट्ठा आवश्यकता से अधिक। क्रीम (Cream) सदा हर-तरह के खाने में लगाया जाता है। चाय में, काफी में, सब तरह के खाने में वही Cream—साढ़ी नहीं, कच्चे दूध का बनता है। और मक्खन भी है और बर्फ का पानी,—जाड़ा हो चाहे गर्मी, दिन हो या रात, बड़ा जुकाम हो चाहे बुखार आये,—खूब पिओ बर्फजल। ये विज्ञानवेत्ता मनुष्य ठहरे, बर्फजल पीने से जुकाम बढ़ता है सुनकर हँसते हैं। जितना ही पिओ उतना ही अच्छा है। और कुल्पी की बात मत पूछो, तरह तरह की बेशुमार। नायगरा प्रपात ईश्वर की इच्छा से ७।८ दफे तो देख चुका। बड़ा सुन्दर और उच्च भावोद्दीपक है, परन्तु जितना तुमने सुना है उतना नहीं। एक दिन जाड़े में अरोरा बोरियालिस (Aurora borealis †) हुआ था।

---

* एक तरह की तरकारी।

† Aurora borealis—पृथ्वी के उत्तरी भाग में रात के समय (वहाँ लगातार छः महीने तक रात होती है) कभी कभी आकाश-मण्डल में एक तरह का कम्पमान वैद्युतिक आलोक दीख पड़ता है। कितने ही आकार और कितने ही वर्णों का होता है। इसीको अरोरा बोरियालिस कहते हैं।

योगेन के शायद अब तक अच्छी तरह आराम हो गया होगा। शारदा का आवारा घूमने का रोग अभी तक दूर नहीं हुआ। एक संघ-परिचालना-शक्ति चाहिये, समझे? —में मौलिकता बहुत कम है, परन्तु है बड़े काम का और अध्यवसायशील मनुष्य, उसकी जरूरत भी बड़ी है, सचमुच बड़ा कारगुजार आदमी है। कुछ चेले भी हों, आग भड़कानेवाले युवक—समझे? —बुद्धि के तीव्र और हिम्मत के पूरे—यम का सामना करनेवाले—तैरकर समुद्र पार करने को तैयार—समझे? ऐसे जब गिन्ती में सैकड़ों हों—स्त्री और पुरुष दोनों। जी-जान से इसीके लिये कोशिश करो। चेले बनाओ और हमारे पवित्र करनेवाले यन्त्र में डाल दो।

परमहंस देव नरेन्द्र को ऐसा कहते थे, वैसा कहते थे, 'इण्डियन-मिरर' को यह सब क्यों कहने गये—इतनी सब अजब अजब तरह की करामाती बातें? परमहंस देव के और जैसे कुछ था ही नहीं, क्यों?—सिर्फ मन की बात समझना और वाहियात करामात!.......राजा से और हरी से मेरा अनेकानेक दण्डवत् लाठीवत् स्टिकवत् छतरीवत् कहना! सन्याल आया जाया करता है, यह अच्छी बात है। गुप्त को तुमलोग चिट्ठीपत्री लिखना—मेरा प्यार कहना और खातिरदारी करना। धीरे धीरे सब आयेंगे ही। मुझे ज्यादा चिट्ठी लिखने का विशेष अवकाश नहीं मिलता। व्याख्यान आदि लिखकर नहीं देता। एक व्याख्यान लिख कर पढ़ा था, वही तुमने छपाया है। बाकी सब, खड़ा हुआ और कह चला

जो मुँह में आया वही, गुरुदेव सब जोड़ते जाते हैं। कागद-पत्र के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। एक दफे डेट्राएट में तीन घण्टे लगातार व्याख्यानबाजी की। कभी कभी मुझे ही आश्चर्य होता है कि 'मेधा, तेरे पेट में भी इतनी करामात थी'!! ये बस कहते हैं, पुस्तक लिखो; जान पड़ता है अब कुछ लिखना ही पड़ेगा। परन्तु यही तो मुश्किल है, कागज-कलम लेकर कौन ऊधम मचाये।

समाज में, संसार में, बिजली की शक्ति भरनी होगी। बैठे ठेबे गप्पें लड़ाने और घण्टी हिलाने का काम है? घण्टी हिलाना गृहस्थों का काम है। तुमलोगों का काम है भावप्रवाह का विस्तार करना।

चरित्र-संगठन हो जाय, फिर मैं आता हूँ, समझे? दो हजार दस हज़ार, बीस हज़ार संन्यासी चाहिये, स्त्री-पुरुष दोनों, समझे? चेले चाहिये चाहे जिस तरह हो।........तुमलोग अपनी जान की बाज़ी लगाकर कोशिश करो। गृहस्थ चेलों का काम नहीं, त्यागी चाहिये—समझे? एक एक आदमी सौ सौ सिर घुटवा डालो—युवक हों और शिक्षित, अहमक नहीं, तो कहूँ कि तुम बहादुर हो। उथलपुथल मचा देनी पड़ेगी, हुक्का-सुक्का फेंक कमर कसकर तैयार हो जाओ—मद्रास और कलकत्ते के बीच में बिजली की तरह लगाओ भी चक्कर कई दफे, जगह जगह केन्द्र खोलो, सिर्फ चेले मूड़ो, स्त्री-पुरुष जो आये—मूड़ लो, फिर मैं आता हूँ। आध्यात्मिकता की बड़ी भारी बाढ़ आ रही है—नीच सदाशय हो

जायँगे, मूर्ख उनकी कृपा से बड़े बड़े पण्डितों के आचार्य हो जायँगे—"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"।—उठो, जागो और जब तक लक्ष्य पर न पहुँचो तब तक न रुको।

सदा विस्तार करना ही जीवन है और संकोच मृत्यु। जो अपनी ही चेतता है, आराम-तलब है, आलसी है, उसके लिये नरक में भी जगह नहीं है। जीवों के लिये जिसमें इतनी करुणा होती है कि खुद उनके लिये नरक में भी जाने को तैयार रहता है—उनके लिये कुछ कसर उठा नहीं रखता, श्रीरामकृष्ण का पुत्र वही है, दूसरों को हीनबुद्धि समझना। जो इस समय पूजा की महा-सान्धि-मुहूर्त में कमर कसकर खड़ा हो जायगा, गांव गांव में, घर घर में, उनका संवाद देता फिरेगा वही मेरा भाई है—वही उनका पुत्र है। यही परीक्षा है। जो रामकृष्ण के पुत्र हैं, वे अपना भला नहीं चाहते, प्राण निकल जाने पर भी दूसरों की भलाई चाहते हैं। जिन्हें अपने ही आराम की सूझ रही है, आलस्य करते हैं, जो अपनी जिद के सामने सबका सिर झुका हुआ देखना चाहते हैं वे हमारे कोई नहीं, वे इस समय हमसे अलग हो जायँ, साथ राजी-खुशी के। उनका चरित्र, उनकी शिक्षा इस समय चारों ओर फैलाते जाओ—यही साधन है, यही भजन है, यही साधना है, यही सिद्धि है। उठो, उठो, बड़े ज़ोरों की तरंग आरही है, onward, onward (आगे बढ़ो आगे बढ़ो)। स्त्री-पुरुष आचाण्डाल सब उनके निकट पवित्र हैं। onward, onward (आगे बढ़ो आगे बढ़ो)। नाम का

समय नहीं है, यश का समय नहीं है, मुक्ति का समय नहीं है, भक्ति का समय नहीं है, इसके लिये फिर कभी देखा जायगा। अभी इस जन्म में उनके महान चरित्र का, उनके महान जीवन का उनके महान आत्मा का अनन्त विस्तार चाहिये। काम यही है, और कुछ नहीं। जहाँ उनका नाम जायगा, कीट-पतंग तक देवता हो जायँगे, हो भी रहे हैं, देखकर भी नहीं देखते? यह बच्चों का खेल नहीं, यह बुजुर्गी छांटना नहीं, यह मज़ाक नहीं —"उत्तिष्ठत जाग्रत" (उठो, जागो)—हरे हरे। वे पीछे हैं। मैं और लिख नहीं सकता—Onward (आगे बढ़ो) सिर्फ यही बात कहता हूँ, जो जो यह चिट्ठी पढ़ेंगे उन सबमें मेरा जोश भर जायगा, विश्वास करो। Onward (आगे बढ़ो)—हरे हरे। चिट्ठी प्रकाशित न करना। मेरा हाथ पकड़कर कोई लिखा रहा है। Onward (आगे बढ़ो)—हरे हरे। सब बह जायँगे—होशियार—वे आते हैं। जो जो उनकी सेवा के लिये —उनकी सेवा नहीं—दीन-दरिद्रों—पापी-तापियों—कीट-पतंगों तक की सेवा के लिये तैयार होंगे उन्हींके भीतर उनका आविर्भाव होगा। उनके मुख पर सरस्वती बैठेंगी, उनकी आँखों पर महामाया महाशक्ति आकर बैठेंगी। जो नास्तिक हैं, अविश्वासी हैं, नीच हैं, वे क्या करने के लिये हमारे साथ आते हैं? वे चले जायँ।

मैं और नहीं लिख सकता। बाकी वे खुद कहें जाकर। इति—

विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को)

५८१ डियरबोर्न एविन्यू,
शिकागो,
मार्फत जार्ज डब्ल्यु हेल, १८९४

प्रिय राखाल,

तुमलोगों के पत्र मिले। बड़ा आनन्द हुआ। म—की लीला सुनकर अत्यन्त दुःख है। गुरुमार विद्या का यही नतीजा है। मेरा कोई अपराध नहीं। वह दस वर्ष पहले यहाँ आया था, उसकी बड़ी खातिरदारी हुई और खूब सम्मान मिला। अब मेरे पौबारह हैं। श्रीगुरु की इच्छा, मैं क्या करूँ! इसमें गुस्सा होना म—की नादानी है। खैर, उपेक्षितव्यं तद्वचनं भवत्सदृशानां महात्मनाम्। अपि कीट-दंशनभीरुकाः वयं रामकृष्णतनयाः तद्धृदयरुधिरपोषिताः? "अलोक-सामान्यमचिन्त्यहेतुकं निन्दन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्" इत्यादीनि संस्मृत्य क्षन्तव्योऽयं जाल्मः। * प्रभु की इच्छा है कि इस देश के लोगों में अन्तर्दृष्टि प्रबोधित हो। —का काम है कि उनकी गति का रोध करे? मुझे नाम की आवश्यता नहीं—I want to be a

* तुम जैसे महात्माओं को चाहिये कि उसकी उपेक्षा करो। हम रामकृष्ण-तनय हैं, उन्होंने अपने हृदय के रुधिर से हमें हृष्टपुष्ट किया है, हम कीड़े के काटने से डर जायँ? "मन्दबुद्धि मनुष्य महात्माओं के असाधारण और सहज ही जिनका कारण नहीं बतलाया जा सकता, ऐसे आचरणों की निन्दा किया करते हैं। (कुमार-सम्भव)—आदि वाक्यों का स्मरण करके इस मूर्ख को क्षमा करना।

voice without a form †। ह—आदि किसीको मेरा समर्थन करने की जरूरत नहीं—कोऽहं तत्पादप्रसरं प्रतिरोद्धुं समर्थयितुं वा, के वान्ये—दयः ? तथापि मम हृदयकृतज्ञता तान् प्रति। "यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते"—नैषः प्राप्तवान् तत्पदवीमिति मत्वा करुणादृष्ट्या द्रष्टव्योऽयमिति *। प्रभु की इच्छा से अभीतक नामयश की आकांक्षा हृदय में नहीं उत्पन्न हुई, शायद होगी भी नहीं। मैं यन्त्र हूँ, वे यन्त्री हैं। वे इस यंत्र द्वारा इस दूर देश में हज़ारों हृदयों में धर्मभाव उद्दीप्त कर रहे हैं। ....मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् †,—मुझे उनकी कृपा पर आश्चर्य हो रहा है। जिस शहर में जाता हूँ उथल पुथल मच जाती है। यहाँवाले मुझे कहते हैं—Cyclonic Hindu ×। याद रहे, सब उनकी इच्छा है—I am a voice without a form.

---

† मैं निराकार वाणी हो जाना चाहता हूँ।

* उनके प्रभावविस्तार की गति में बाधा देनेवाला या उसकी सहायता करनेवाला मैं हूँ कौन ? —आदि भी कौन हैं ? तथापि—के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। "जिस अवस्था में स्थित हो जाने पर मनुष्य कठिन दुःख में भी विचलित नहीं होता" (गीता)—इस मनुष्य को अभी वह अवस्था नहीं मिली, यह सोचकर इसके प्रति दयादृष्टि रखनी चाहिये।

† मूक को वाक्शक्तिसम्पन्न और लंगड़े को पर्वत पार कर जाने में समर्थ करते हैं।

× आँधी की तरह, अपने सामने जिस किसीको पाता है, उलट पुलट देता है—ऐसा शक्तिशाली हिन्दू।

इङ्गलैण्ड जाऊँगा या यमलैण्ड (यमपुरी) जाऊँगा, प्रभु जानें। वही सब बन्दोबस्त कर देंगे। इस देश में एक चुरुट की कीमत एक रुपया है। एक दफे किराए की गाड़ी पर चढ़ने से तीन रुपये खर्च हो जाते हैं—एक कुर्ते की कीमत १०० रुपया है। नौ रुपये रोज का होटेल खर्च है—सब प्रभु जुटा देते हैं। .... जय प्रभु, मैं कुछ नहीं जानता। 'सत्यमेव जयते नानृतं सत्येनैव पन्था विततो देवयानः।' * 'अभीः' होना चाहिये। डरते हैं कापुरुष, वही आत्मसमर्थन भी करते हैं। हममें से कोई जैसे मेरा समर्थन करने के लिये लोहा न ले। मद्रास की खबर मुझे बीच बीच में मिलती रहती है; और राजपूताने की भी। Indian Mirror (इण्डियन मिरर) ने तबेले की बला बन्दर के सिर लादनेवाली कहावत को चरितार्थ करते हुए मुझसे खूब चुटकियाँ ली हैं—सुनी किसकी बात और ढाल दी गई किस पर। सब खबरें पाता हूँ। अरे भाई, ऐसी आँखें हैं जो ७००० कोस दूर तक देखती हैं, यह बात सच है। चुप मार जाना, धीरे धीरे सब बातें निकल पड़ेंगी —जहाँ तक उनकी इच्छा होगी उनकी एक भी बात झूठ नहीं होने की। भाई, कुत्ते बिल्ली की लड़ाई देखकर क्या कहीं मनुष्य दुःख

---

* विजय सत्य की ही होती है, मिथ्या की नहीं। सत्यबल से ही देवयानमार्ग की प्राप्ति होती है (प्रश्नोपनिषत्)। वेदान्त के मत से, मृत्यु के पश्चात्, जितनी गतियाँ होती हैं, उनमें से देवयान द्वारा प्राप्त गति श्रेष्ठ है। वनों में उपासना करनेवाले और भिक्षापरायण निष्काम संन्यासियों की ही यह गति होती है।

करते हैं ? इसी तरह साधारण मनुष्यों की लड़ाई, झगड़ा और ईर्ष्या-द्वेष देखकर तुमलोगों के मन में कोई दूसरा भाव न आना चाहिये। दादा, आज छः महीने से कह रहा हूँ कि पर्दा हट रहा है—धीरे धीरे उठता जाता है, slow but sure (धीरे धीरे परन्तु निश्चित रूप से)—समय में प्रकाश होगा। वे जानें—"मन की बात क्या कहूँ ? सखी !—कहने की मनाही है।" भाई, ये सब लिखने की बातें नहीं।........पतवार न छोड़ना, दबाये बैठे रहो—पकड़ बिलकुल ठीक है, इसमें ज़रा भी भूल नहीं; रही पार जाने की बात, सो आज या कल—बस इतना ही। दादा, Leader (नेता) क्या कभी बनाया जा सकता है ? Leader (नेता) पैदा होता है, समझे ? और फिर लीडरी करना बड़ा कठिन काम है—दास्य दासः—हजारों आदमियों का मन रखना। Jealousy-selfishness (ईर्ष्या, स्वार्थपरता) जब ज़रा भी न हों, तब Leader (नेता) है। पहले तो by birth (जन्मसिद्ध), फिर unselfish (निःस्वार्थ) हो, तब है Leader (नेता)। सब ठीक हो रहा है, सब ठीक आयेंगे। वे जाल फेंक रहे हैं, ठीक जाल खींच रहे हैं—वयमनुसरामः, वयमनुसरामः। प्रीतिः परमसाधनम्*, समझे ? Love conquers in the long run †, हैरान होने से काम नहीं चलेगा—wait wait (ठहरो)—सब्र में मेवे फलेंगे ही।....

तुमसे कहता हूँ, भाई, जैसा चलता है चलने दो—परन्तु देखना—कोई form (बाहरी अनुष्ठानपद्धति) जैसे आवश्यक न हो

---

* हमलोग उनका अनुसरण करेंगे, प्रीति ही परम साधन है।

† अन्त में प्रेम की ही विजय होती है।

—Unity in variety (बहुत्व में एकत्व)—सार्वजनीन भाव में जैसे किसी तरह की बाधा न हो। Everything must be sacrificed if necessary for that one sentiment—universality*। मैं मरूँ चाहे बचूँ, देश जाऊँ या न जाऊँ, तुमलोग अच्छी तरह याद रखना कि, सार्वजनीनता—Perfect acceptance, not tolerance only, we preach and perform. Take care how you trample on the least rights of others †। इसी भँवर में बड़े बड़े जहाज डूब जाते हैं। पूरी भक्ति, परन्तु कट्टरता छोड़कर, दिखानी होगी, याद रखना। उनकी कृपा से सब ठीक हो जायगा।........ सब की इच्छा है कि Leader (नेता) हो—परन्तु वह पैदा जो होता है—यही न समझने के कारण इतना अनिष्ट होता है।

....हम सभीको चाहते हैं—It is not at all necessary that all should have the same faith in our Lord as we have, but we want to unite powers of goodness against all the powers of evil. × ....संन्यासी और

---

* यदि ज़रूरत हो तो "सार्वजनीनता" के भाव की रक्षा के लिये सब कुछ छोड़ना होगा।

† हमलोग केवल इसी भाव का प्रचार नहीं करते कि, "दूसरों के धर्म पर द्वेष न करना"; नहीं, हमलोग सब धर्मों को सत्य समझते और उनका ग्रहण भी पूर्णरूप से करते हैं। हम इसका प्रचार भी करते हैं और इसे कार्य में परिणत करके दिखाते हैं। सावधान रहना, दूसरे के अत्यन्त छोटे अधिकार में भी हाथ न डालना।

× इसकी मुतलक ज़रूरत नहीं कि हमारे ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) पर हमारे ही जैसे विश्वास सबका हो। हम केवल संसार की सम्पूर्ण अहितकरी शक्तियों के विरुद्ध सम्पूर्ण कल्याणकरी शक्तियाँ एकत्र करना चाहते हैं।

गृहस्थ में कोई भेद न देखेगा, तभी तो यथार्थ संन्यासी है। ....
५।७ छोकड़ों ने, जिनके पास एक पैसा भी न था, मिलकर एक काम शुरू किया--वही अब इस तरह की accelerated (क्रम क्रम से बढ़नेवाली) गति से बढ़ता जा रहा है—यह छूंछी आवाज है या प्रभु की इच्छा? यदि प्रभु की इच्छा है तो तुमलोग दलबन्दी Jealousy (ईर्ष्या) छोड़कर united action (समवेत होकर कार्य) करो। Shameful (लज्जा की बात है) हमलोग Universal religion (सार्वजनीन धर्म) कर रहे हैं दलबन्दी करके। ....

सभी यदि किसी दिन क्षण भर के लिये सोचें कि सोचने ही से कोई बड़ा नहीं हो जाता—जिसे वे उठाते हैं वही उठता है,—जिसे वे गिराते हैं वह गिर जाता है, तो कुछ उलझन सुलझ जाय। परन्तु वही 'अहं'—खोखला अहं—जिसके ज़रा हाथ हिलाने की भी शक्ति नहीं, अगर दूसरे को कहे—'उठने न दूँगा' तो होता क्या है? वही Jealousy (ईर्ष्या,) absence of conjoined action (सम्मिलित कार्य-शक्ति का अभाव) गुलाम जाति का nature (स्वभाव) है, परन्तु हमें इसे उखाड़ फेंकने की चेष्टा करनी चाहिये।.... वही terrible jealousy characteristic है हमारा (यही भयानक ईर्ष्या हमारा प्रधान लक्षण है)—खासकर बङ्गालियों का; क्योंकि We are the most worthless and superstitious and the most cowardly and lustful of all the

Hindus. * दस पाँच देश देखने ही से यह अच्छी तरह मालूम हो जायगा। यहाँ वालों से स्वाधीनता पाये हुए हमारे समात्मा हबशी—जिनमें से अगर कोई भी बड़ा आदमी हो गया तो—white (गोरों) के साथ मिलकर उसे नेस्तनाबूद कर देने की कोशिश करते हैं।

हम ठीक वैसे ही हैं।—कीड़े—पैर उठाकर रखने की भी शक्ति नहीं—बीबी का आंचल पकड़े तास खेलते और हुक्का गुड़-गुड़ाते हुए जिन्दगी पार कर देते हैं, और अगर उनमें से कोई एक कदम बढ़ जाता है तो सब के सब उसके पीछे पड़ जाते हैं—हरे हरे! At any cost, any price, any sacrifice (जिस तरह हो, इसके लिये हमें चाहे जितना कष्ट उठाना पड़े) यह भाव हमारे भीतर न घुसने पाये—हम दस ही क्यों न हों—दो क्यों न रहें—Don't care (परवा ज़रा भी नहीं), परन्तु वही जितने हों perfect character (सम्पूर्ण शुद्धचरित्र) हों। ....माँगब भलो न बाप से रघुबर राखें टेक। रघुबर टेक रखेंगे दादा—इस विषय में तुम निश्चिन्त रहो। ....राजपूताना, पंजाब, N.W.P. (उत्तर पश्चिम प्रान्त)—मद्रास—उन्हीं सब देशों में उनका प्रचार करना होगा—राजपूताने में जहाँ "रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाइ बरु बचन न जाई" अभीतक विद्यमान है। चिड़िया उड़ते

* सारी हिन्दूजातियों में से अधिक हमीं सब से अधिक अपदार्थ कुसंस्कारों से भरे, कापुरुष और कामी हैं।

उड़ते एक जगह पहुँचती है जहाँ से अत्यन्त शान्त भाव से नीचे की ओर देखती है। क्या तुम वहाँ पहुँचे ? जो लोग वहाँ नहीं पहुँचे उन्हें दूसरे को शिक्षा देने का अधिकार नहीं। हाथ पैर ढीले करके बह जाओ—ठीक पहुँच जाओगे।

शीत देव भाग रहे हैं—जाड़ा तो मैंने किसी तरह काट डाला। जाड़े में यहाँ तमाम देह में electricity (तड़ित) भर जाती है। Shakehand करो (साहबों से हाथ मिलाओ) तो Shock (धक्का) लगता है और उससे आवाज आती है—अँगुलियों से गैस जलाई जा सकती है। और जाड़े का हाल तो मैंने लिखा ही है। सारे देश में अपनी धाक जमाये फिरता हूँ, परन्तु शिकागो मेरा मठ है—घूमता हुआ लौटकर शिकागो में ठहरता हूँ। इस समय पूरब को जा रहा हूँ—कहाँ बेड़ा पार होगा, वही जानें। ....

—कैसा है ?—की तुमलोगों पर वैसी ही प्रीति है न ? वह प्रायः आया करता है न ? तुमलोग उसके पास जाते हो या नहीं —तुमलोग उसे श्रद्धाभक्ति करते हो या नहीं ? सुनो, संन्यासी फंन्यासी वहियात हैं—मूकं करोति वाचालं इत्यादि, किसके भीतर क्या है समझ में नहीं आता। उन्होंने उसे बड़ा बनाया है—वह हमारा पूज्य है। यदि इतना देख-सुनकर भी तुमलोगों को विश्वास न हो तो धिक्कार है तुमलोगों को ! वह तुम्हें प्यार करता है न ! उसे मेरी आन्तरिक प्रीति सूचित करना।—को भी मेरा प्यार—वे बड़े उन्नतमना मनुष्य हैं।—कैसे हैं ? उन्हें कुछ विश्वास-भक्ति हुई ?—को

मेरा प्रीतिसम्भाषण।—कोल्हू में ठीक चल रहा है न? धैर्य रखना होगा—कोल्हू ठीक चलता रहेगा। सबको मेरी हार्दिक प्रीति।

अनुरागैकहृदयः

विवेकानन्दः।

पुन:—

—को उनके जन्मजन्मान्तर के दास का धूल्यवलुण्ठित साष्टांग प्रणाम—उनके आशीर्वाद से मेरा सर्वतोमङ्गल है।

(श्री एस० सुब्रह्मण्य अय्यर को)

५४१ डियरबोर्न एविन्यू, शिकागो,

३ जनवरी, १८९५

प्रिय महाशय,

प्रेम, कृतज्ञता और विश्वास-पूर्ण हृदय से आज मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। मैं आपसे पहले ही कह देता हूँ कि आप उन थोड़े मनुष्यों में से हैं जिन्हें अपने जीवन में मैंने विश्वास का पक्का पाया। आप पूरी मात्रा में भक्ति और ज्ञान का अपूर्व सम्मेलन किये हुए हैं; और इसके साथ ही अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करने में आप पूरे समर्थ हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आप

निष्कपट हैं, और इसीलिये मैं अपने थोड़े से विचार आपके सामने विश्वासपूर्वक उपस्थित करता हूँ।

भारत में हमारा कार्य अच्छे ढंग से शुरू हुआ है और इसे केवल जारी ही न रखना चाहिये बल्कि पूरे ज़ोर के साथ बढ़ाना चाहिये। सब तरह के सोच विचार के बाद मेरा मन अब निम्न-लिखित कार्यशैली पर डटा हुआ है। पहले मद्रास में धर्म शिक्षा के लिये एक विद्यालय (कालेज) खोलना अच्छा होगा और आगे इसका कार्यक्षेत्र धीरे धीरे बढ़ाया जायगा। नवयुवकों को वेदों, तथा विभिन्न भाष्यों और दर्शनों की अच्छी शिक्षा देनी चाहिये। जगत के अन्यान्य धर्मों का ज्ञान भी इसमें शामिल रहेगा। साथ ही एक अँगरेजी और एक देशी भाषा का पत्र निकालना चाहिये जो उस विद्यालय के मुखपत्र होंगे।

पहला काम यही है, और छोटे छोटे आरम्भ से ही बड़े बड़े कार्य पैदा हो जाते हैं। कई कारणों से मद्रास ही इस समय इस काम के लिये सबसे अच्छी जगह है। बम्बई में वही मुद्दत की जड़ता चली आ रही है। बङ्गाल में यह डर है कि अब जैसा वहाँ पाश्चात्य विचारों का मोह फैला हुआ वैसा कहीं इसकी उल्टी प्रति-क्रिया भी न हो जाय। इस समय मद्रास ही जीवन-यात्रा की प्राचीन तथा आधुनिक प्रणालियों के गुणों को समझता हुआ उनका सुन्दर सामञ्जस्य कर रहा है।

भारत के शिक्षित श्रेणियों से मैं इस बात पर सहमत हूँ कि समाज का आमूल परिवर्तन करना आवश्यक है। पर यह किया किस तरह जाय! संस्कारकों की सब कुछ तोड़ डालने की रीति व्यर्थ ठहरी। मेरा तरीका यह है। हमने अतीत काल में खराबी नहीं की—बेशक नहीं। हमारा समाज खराब नहीं। वह अच्छा है, केवल मैं उसे और भी अच्छा देखना चाहता हूँ। हमें भूल से सत्य को, बुरे से अच्छे को, पहुँचना नहीं है, पर सत्य से उच्चतर सत्य को, अच्छे से अधिकतर अच्छे को—सबसे अच्छे को पहुँचना है। मैं अपने देशवासियों से कहता हूँ कि अबतक तो आपने अच्छा किया है, अब और भी अच्छा करने का मौका आया है।

अब जाति की बात लीजिये। संस्कृत में 'जाति' का अर्थ है वर्ग या श्रेणी और यही सृष्टि की पहली बात है। सृष्टि का अर्थ ही है विचित्रता अर्थात् जाति। अनेक वेदों में लिखा है—'एकोहं बहुस्यां प्रजायेय'। प्रजापति ब्रह्म ने सोचा—मैं अकेला हूँ अनेक हो जाऊँ, प्रजा उत्पादन करूँ। सृष्टि के पूर्व ही एकत्व रहता है, सृष्टि हुई कि वैचित्र्य शुरू हुआ। अतः यदि यह विचित्रता बन्द हो जाय तो सृष्टि का ही लोप हो जायगा। जब तक कोई जाति शक्तिशाली और क्रियाशील रहेगी, तब तक वह विचित्रता अवश्य पैदा करेगी। जब उसका ऐसी विचित्रता उत्पादन करना बन्द होता है या बन्द कर दिया जाता है तब वह जाति नष्ट हो जाती है। जाति का मूल अर्थ था—एवं सैकड़ों वर्ष तक यही अर्थ प्रचलित था—प्रत्येक

व्यक्ति की अपनी प्रकृति को, अपने विशेषत्व को प्रकाशित करने की स्वाधीनता। खूब आधुनिक ग्रन्थों में भी जातियों का आपस में खाना-पीना निषिद्ध नहीं हुआ है; और न किसी प्राचीन ग्रन्थ में आपस में व्याह शादी करना मना है। तो भारत के अधःपतन का कारण क्या हुआ?—जाति सम्बन्धीय यह भाव छोड़ देना। जैसा गीता कहती है—जाति नष्ट हुई कि संसार भी नष्ट हुआ। अब यह हमें खूब सत्य प्रतीत होता है कि इस विचित्रता का नाश होते ही जगत का नाश हो जायगा। आजकल की वर्णविभाग (Caste) यथार्थ जाति नहीं है, बल्कि उसकी प्रगति में एक रुकावट ही है। सचमुच इसने सच्ची जाति अर्थात् विचित्रता की स्वच्छन्द गति को रोक दिया है। कोई भी विशिष्टरूपवाली रीति या विशेषाधिकार अथवा वंशगत जाति-विभाग—वह चाहे जिस आकार का हो—उस सच्ची जाति की स्वच्छन्द गति को रोक देता है, और जब कभी कोई जाति या समूह इस अनन्त विचित्रता का पैदा करना छोड़ देता है, तब उसका मरना अनिवार्य है। इसलिये मेरे देशवासियो, आपसे मुझे कहना यही है कि भारत का पतन इसलिये हुआ कि आपने जाति अर्थात् विचित्रता को रोका और रद्द कर दिया। हरएक निर्दिष्ट रूपवाला उच्च कुल अथवा विशेषाधिकार-प्राप्त उच्च श्रेणी यथार्थ जाति की घातक है और वह जाति नहीं है। यथार्थ जाति को स्वतन्त्रता दीजिये; जाति की राह से हरएक रुकावट को मिटा दीजिये, बस तभी हम उठेंगे। यूरोप को देखिये। जब उसने जाति

को स्वच्छन्द गति से बढ़ने दिया और हरएक व्यक्ति की जाति के विकास में जो बाधाएँ थीं उनके अधिकांश को हटा दिया तभी उसने उन्नति प्राप्त की। अमेरिका में यथार्थ जाति के विकास के लिये सबसे अच्छा सुभीता है, और इसीलिये अमेरिकावाले शक्तिशाली हैं। प्रत्येक हिन्दू को मालूम है कि जन्मते ही हरएक लड़के और लड़की की जाति का निर्णय करने की ज्योतिषी लोग कोशिश करते हैं। वही असली जाति है—हरएक व्यक्ति का व्यक्तित्व—और ज्योतिष इसे स्वीकार करता है। हमें भी उन्नत होने के लिये इसको फिर से पूरी स्वतंत्रता देनी चाहिये। याद रखिये कि इस विचित्रता का अर्थ वैभव नहीं, अथवा कोई विशेषाधिकार नहीं।

मेरी कार्यप्रणाली यही है—हिन्दुओं को दिखाना चाहिये कि उन्हें कुछ छोड़ना न पड़ेगा, परन्तु केवल ऋषियों के प्रवर्तित मार्ग पर चलना होगा और अपनी वह जड़ता त्याग देनी होगी जो सदियों की गुलामी का फल है। हाँ, मुसलमानी अत्याचार के समय हमें विवश होकर अपनी प्रगति रोक देनी पड़ी, क्योंकि तब प्रगति की बात नहीं, जीने मरने की समस्या थी। अब वह दबाव नहीं रहा, अतः हमें आगे बढ़ना चाहिये—उस सब कुछ तहस नहस करनेवाले रास्ते से नहीं जो कि स्वधर्मत्यागी हिन्दू और मिशनरी लोग हमें बतला रहे हैं—लेकिन अपनी खास राह पर, अपने ही रास्ते पर चलना होगा। अब तो सब कुछ भद्दा मालूम होता है क्योंकि इमारत अधबनी है। सदियों के अत्याचार के कारण हमें बनाने का काम

छोड़ देना पड़ा। अब इमारत को पूरा कर लो, बस सब कुछ अपनी अपनी जगह पर सुन्दर दिखाई देगा। यही मेरा तरीका है। मैं इसका पूरा कायल हूँ। प्रत्येक जाति के जीवन का एक मुख्य प्रवाह रहता है; भारत में वह धर्म है। उसे प्रबल बनाओ, बस दोनों तरफ का जल उसी के साथ साथ चलेगा। यही मेरी विचार-शैली का दिग्दर्शन है। समय पाकर मैं अपने सब विचारों को प्रकट करूँगा, पर इस समय मैं देखता हूँ कि इस देश में भी मुझे कुछ करना है। इसके सिवा मुझे इस देश से—और केवल यहीं से—सहायता पाने की आशा है। लेकिन अब तक अपने विचारों को फैलाने के सिवा मैं और कुछ न कर सका। अब मेरी इच्छा है कि भारत में भी एक ऐसी चेष्टा की जाय।

मैं कब तक भारत लौटूँगा इसका मुझे पता नहीं। मैं प्रभुजी की प्रेरणा का दास हूँ। मैं उन्हीं के हाथ में हूँ।

"इस संसार में दौलत की खोज में लगे हुए मैंने, हे प्रभु, तुम्हीं को सबसे अच्छा जौहर पाया। मैं तुमपर अपने को निछावर कर देता हूँ।"

"एक प्रेमास्पद को ढूँढ़ते हुए मैंने तुम्हीं को पाया। मैं तुम्हें अपने को सौंप देता हूँ।" (यजुर्वेद संहिता)

प्रभु आपको सदा के लिये आशीर्वाद दें!

भवदीय चिरकृतज्ञ

विवेकानन्द

पु०—इस पत्र को प्रकाशित करने की जरूरत नहीं।

(स्वामी ब्रह्मानन्द को)

मार्फत मि० ई० टी०स्टर्डी,
हाई विउ, कैवरशम्, रीडिं,
४ अक्टूबर, १८९५

प्रिय राखाल,

तुम जानते हो, अब मैं इंग्लैण्ड में हूँ। करीब एक महीना यहीं रहकर फिर अमेरिका चला जाऊँगा। अगले गरमियो में फिर इग्लैण्ड आऊँगा। इस समय इंग्लैण्ड में विशेष कुछ होने की आशा नहीं है, परन्तु प्रभु सर्वशक्तिशाली हैं। धीरे धीरे देखा जायगा।

इस समय—का आना असम्भव हैं। अर्थात् रुपये स्टर्डी साहब के हैं, वे जिस तरह का आदमी चाहते हैं, वैसा ही मँगना है। पूर्वोक्त मि० स्टर्डी ने मुझसे मंत्र लिया है। यह बड़ा उद्यमी और सज्जन है। थियोसफी के झमेले में पड़कर वृथा समय नष्ट किया, इसलिये इसे बड़ा अफसोस है।

पहले तो ऐसे आदमी की ज़रूरत है, जिसे अंगरेजी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान हो।—यहाँ आने पर जल्दी अंगरेजी सीख लेंगे, यह सच है, परन्तु मैं यहाँ सीखने के लिये मनुष्य अभी नहीं मँगा सकता, जो सिखा सकें पहले उन्हींकी आवश्यकता है। दूसरी बात यह है कि जो सम्पत्ति और विपत्ति में मुझे न छोड़ें, ऐसे ही मनुष्य का मुझे विश्वास है। बड़ा ही विश्वासी मनुष्य होना

चाहिये। फिर नींव डाली जा चुकने पर, जिसकी जितनी इच्छा, गुलगपाड़ा मचाओ, कुछ भय नहीं।........दादा, माना कि रामकृष्ण परमहंस एक नाचीज़ थे, माना कि उनके आश्रम में जाना बड़ी भूल का काम हुआ, परन्तु अब उपाय क्या है? यही नहीं कि एक जन्म मुफ्त ही बीता, पर क्या मर्द की बात भी टलती है? क्या दस पति भी होते हैं? तुमलोग चाहे जिसके दल में जाओ, मेरी ओर से कोई रुकावट नहीं—ज़रा भी नहीं। परन्तु दुनियाभर में चक्कर लगाकर देख रहा हूँ, उनके घर को छोड़ और सभी जगह मुँह में कुछ, और पेट में कुछ और है। उनकी मण्डली पर मेरा अत्यन्त प्रेम और अत्यन्त विश्वास है। क्या करूँ? हठी कहो तो कह लेना, परन्तु यही मेरी असल बात है। जिसने उन्हें आत्मसमर्पण किया है, उसके पैरों में काँटा चुभा तो वह मेरे हाड़ों में बेधता है, यों तो मैं सभीको प्यार करता हूँ। मेरी तरह असाम्प्रदायिक संसार में विरला होगा, परन्तु उतनी ही मेरी हठ है, माफ करना। उनकी दुहाई नहीं तो और किसकी दुहाई दूँ। अगले जन्म में कोई बड़ा गुरु देख लिया जायगा, इस जन्म और इस शरीर को तो उसी मूर्ख ब्राह्मण ने मोल ले लिया है।

पेट की बात खुलकर कही दादा, गुस्सा न करना, मैं तुम लोगों का गुलाम हूँ जब तक तुम उनके गुलाम हो, बालभर इसके बाहर हुए कि जैसे तुम वैसे ही मैं।........अमाज-समाज जितने देखते हो, देश में और विदेश में, सबको उन्होंने पहले ही से

निगलकर पेट में डाल लिया है दादा—"मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।" (मेरे द्वारा ये सब पहले ही से हत हो चुके हैं, हे अर्जुन, तुम्हें केवल निमित्तमात्र होना है!) आज हो या कल, वे सब तुम्हारे अङ्ग में मिल जायँगे। हाय रे अल्प विश्वास! उनकी कृपा से "ब्रह्माण्डं गोष्पदायते"। निमकहराम न होना, इस पाप का प्रायश्चित नहीं है। नाम-यश, सुकर्म, यज्जुहोषि यत्तपस्यासि यदश्नासि सब उनके चरणों में समर्पण कर दो। हमें और क्या चाहिये? उन्होंने ग्रहण कर लिया तो और क्या चाहिये? भक्ति स्वयं फलस्वरूपा है—और क्या चाहिये? हे भाई, जिन्होंने खिला-पिलाकर विद्या-बुद्धि देकर मनुष्य बनाया, जिन्होंने आत्मा कि आँखे खोल दीं, जिन्हें रातदिन सजीव ईश्वर देखा, जिनकी पवित्रता, प्रेम और ऐश्वर्य का राम, कृष्ण, बुद्ध, यीशू, चैतन्य आदि में कण-मात्र प्रकाश है, उनके निकट निमकहरामी!....बुद्ध, कृष्ण आदि का तीन चौथाई हिस्सा कपोल-कल्पना के सिवा और क्या है?........ अरे तुम ऐसे दयालु देव की दया भूलते हो? बुद्ध, कृष्ण, यीशू, पैदा हुए थे या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं है। और साक्षात् देवता को देखकर भी तुम्हें कभी कभी मतिभ्रम होता है! तुमलोगों के जीवन को धिक्कार है! मैं और क्या कहूँ? देश-विदेश में नास्तिक-पाषण्डी भी उनकी मूर्ति की पूजा करते हैं, और तुमलोगों को समय समय पर मतिभ्रम होता है! तुम्हारे जैसे लाखों वे अपने श्वास से गढ़ लेंगे। तुमलोगों का जन्म धन्य है, कुल धन्य है, देश

धन्य है कि उनके पैरों की धूलि मिली। मैं क्या करूँ, मुझे लाचार होकर ऐसा कट्टर होना पड़ रहा है। मुझे तो उनके जनों को छोड़ और कहीं पवित्रता और निस्स्वार्थता नहीं देखने को मिलती। सभी जगह 'मुँह में राम राम, पेट में कसाई का काम' है—सिर्फ उनके जनों को छोड़कर। वे रक्षा कर रहे हैं, यह मैं देख जो रहा हूँ। अरे पागल, परी जैसी औरतें, लाखों रुपये, ये सब तुच्छ हो रहे हैं, यह क्या मेरे बल पर!—या वे रक्षा कर रहे हैं इसलिये! उनके सिवा दूसरे किसीको एक भी रुपया या स्त्री के बारे में मैं विश्वास जो नहीं कर सकता। उन पर जिसका विश्वास नहीं है और उनमें जिसकी भक्ति नहीं है उसका कहीं कुछ न होगा। यह सीधी भाषा में कह दिया, याद रखना।

....हरमोहन ने अपनी मन्द अवस्था का हाल लिखा है और शीघ्र ही जगह छोड़ने को लिखा है। लेक्चर माँगे हैं—लेक्चर-सेक्चर अभी कुछ नहीं है, परन्तु कुछ रुपये अभी कमर में हैं, उसे भेज दूँगा, डरने की कोई बात नहीं। पत्र पाते ही भेज दूँगा, परन्तु सन्देह हो रहा है कि मेरे (पहले के) रुपये मारे गये, इसीलिये नहीं भेजे। दूसरे, किस पते पर भेजूँ, सो भी नहीं मालूम। मद्रासवाले, जान पड़ता है, पत्र न निकाल सके। विषयबुद्धि हिन्दू-जाति के बिलकुल हैं जो नहीं। जिस समय जिस काम के लिये प्रतिज्ञा करना ठीक उसी समय उसे करना ही चाहिये, नहीं तो लोगों का विश्वास उठ जाता है। रुपये-पैसे की बात है, पत्र पढ़ते ही उत्तर

देना चाहिये। ....मास्टर महाशय अगर राजी हो तो उन्हें कलकत्ते का एजेन्ट होने के लिये कहना। उनपर मेरा पूर्ण विश्वास है और वे इन विषयों को अच्छा समझते हैं। लड़कपन और जल्दबाजी का काम नहीं है। उन्हें कोई ऐसा Centre (केन्द्र) ठीक करने के लिये कहना जो पता क्षण क्षण में न बदले और जहाँ मैं कलकत्ते के सभी पत्र भेज सकूँ।

किमधिकमिति

विवेकानन्द

(स्वामी रामकृष्णानन्द को)

१८९५

प्रिय शशी,

तुम्हारे एक पत्र में अनेक समाचार मिले। पर सब का विशेष हाल तुमने नहीं लिखा। —के एक पत्र से मुझे खबर मिली कि वह सिंहल जा रहा है। शारदा जो कुछ कर रहा है उससे मैं सहमत हूँ, परन्तु रामकृष्ण परमहंस अवतार थे, इत्यादि बातों का प्रचार करने की ज़रूरत नहीं। वे परोपकार करने आये थे, अपना नाम जाहिर करने के लिये नहीं। चेले गुरु का नाम लेते हुए, गुरु जो शिक्षा देने आये थे उस पर तिलाञ्जलि दे देते हैं, और नतीजा उसका यह होता है कि दलों की सृष्टि होती है। कर्मकाण्ड को

त्यागने की कोशिश करना। कर्म तभी तक करना चाहिये जब तक ज्ञान हुआ नहीं। दल बाँधना या कूएँ के मेंड़क की तरह संकीर्ण मत का पोषण करना मेरा काम नहीं है—और जो कुछ मैं भले ही करूँ। एकमात्र कर्म जो मैं समझता हूँ वह परोपकार है, बाकी सब कुकर्म है। इसीलिये मैं बुद्धदेव के चरणों में सिर नवाता हूँ। मैं वेदान्ती हूँ—मुझ सच्चिदानन्द के अपने महान रूप के सिवा दूसरा ईश्वर मुझे प्रायः सूझता ही नहीं। अवतार शब्दों का मतलब उन पुरुषों से है जिन्होंने उस ब्रह्मत्व का लाभ किया है, यानी जो जीवन्मुक्त हैं—अवतार-विशेषत्व मैं नहीं देख पाता हूँ,—ब्रह्मा से लेकर एक पौधे तक सब कोई यथासमय मुक्ति को प्राप्त होगा, और हमें चाहिये कि सबको उस अवस्था के पाने में हम मदद दें। इस मदद देने का नाम धर्म है, बाकी सब अधर्म है। इसी सहायता का नाम कर्म है, बाकी सब कुकर्म है, बस मैं यही देख रहा हूँ। दूसरे प्रकार के—जैसे तान्त्रिक या वैदिक—कर्मों से फल होना सम्भव है, पर उनकी शरण लेने से सिर्फ जीवन का क्षय होता है —क्योंकि वह पवित्रता जो कर्म का फल है, केवल परोपकार से ही मिल सकती है। यज्ञादि कर्मों से भोग आदि का मिलना सम्भव है, पर आत्मा की पवित्रता उनसे असम्भव है। प्रत्येक जीव की आत्मा में सब कुछ मौजूद है। जो कहता है कि मैं मुक्त हूँ, वही मुक्त होगा; और जो कहता है कि मैं बद्ध हूँ, वह बद्ध होगा। अपनेको दीन हीन सोचना मेरी समझ में पाप और अज्ञता है। "नायमात्मा

बलहीनेन लभ्यः"—यह आत्मा निर्बल आदमियों को नहीं मिल सकती। "अस्ति ब्रह्म वदसि चेदस्ति भविष्यसि। नास्ति ब्रह्म वदसि चेन्नास्त्येव भविष्यसि।" यदि कहो कि ब्रह्म है तो वह बात सच निकलेगी, और यदि कहो कि ब्रह्म है नहीं तो बात वैसी ही होगी। जो सदा अपनेको दुर्बल सोच रहा है वह कभी बलवान नहीं होगा। जो अपनेको सिंह समझता है वह "निर्गच्छति जगज्जालात् पिञ्जरादिव केशरी"—संसार रूपी फन्दे से उस तरह भाग निकलता है जैसा सिंह अपने पिंजरे से। दूसरी बात यह है कि रामकृष्ण परमहंस कोई नया तत्त्व प्रचार करने नहीं आये थे; हाँ, पुराने सत्य को प्रकट करने अवश्य आये थे। अर्थात्—He was the embodiment of all the past religious thought of India. His life alone made me understand what the Shastras really meant and the whole plan and scope of the old Shastras. (वे भारत के कुछ प्राचीन धर्मभावों के साकार विग्रह थे। उन्हींके जीवन से मुझे ठीक ठीक पता लगा है कि हमारे शास्त्र का क्या आशय है और उसकी प्रणाली तथा विषय क्या है।)

यहाँ मिशनरी-विशनरियों की प्रायः एक न चली। ईश्वर की इच्छा से अमेरिकावाले मुझे खूब चाहते हैं, वे किसीकी बात पर नहीं आनेवाले हैं। यहाँ के लोग मेरे विचार (Ideas) जैसा समझते हैं वैसा अपने देश के लोग नहीं समझ सकते, और ये सब (अमेरिका-वाले) स्वार्थपर नहीं हैं। यानी काम के समय वे उन डाह और अभिमान के भावों को दूर फेंक देते हैं। तब सब मिलकर एक

योग्य पुरुष के मतानुसार चलते हैं। इसीसे ये इतने बड़े हैं। पर ये वह जाति हैं जिसका देवता रुपया है। हर एक बात में रुपये की फिक्र रहती है। हमारे देशवासी रुपये पैसे के बारे में बहुत उदार होते हैं—ये वैसे नहीं। घर घर कंजूस मिलते हैं। वह धर्म सा है। हाँ, कुछ बुराई हो जाने पर ये पादड़ियों के हाथ में आ जाते हैं। तब रुपया खर्च कर स्वर्ग की राह साफ रखते हैं। ये बातें सभी देशों में एक सी हैं—Priestcraft (पुरोहितों की करतूत)। मैं कब देश लौटूँगा, या न लौटूँगा, इसकी मुझे खबर ही नहीं। यहाँ जैसा मैं रमता फिरता हूँ, वहाँ भी वैसा करना पड़ेगा, पर यहाँ एक बात विशेष है कि हजारों आदमी मेरी बातें सुनते और समझते हैं—हजारों आदमियों को लाभ पहुँचता है। लेकिन वहाँ क्या होगा? मद्रास और बम्बई में मेरे पसन्द बहुत आदमी हैं। वे विद्वान हैं, इन सब बातों को समझते हैं और वे दयालु हैं, इसीलिये वे परहित करने की बात समझते हैं। अपने जीवन पर दृष्टि डालते हुए मुझे अफसोस नहीं होता। देश देश में कुछ न् कुछ लोकशिक्षा देता फिरा—उसके बदले रोटी के टुकड़े खाये। यदि मैं देखता कि कोई काम न किया, सिर्फ लोगों को ठगकर खाया, तो आज गले में रस्सी लगाकर मरता। जो लोग अपने को लोकशिक्षा देने के अयोग्य समझते हैं वे शिक्षक का वेश पहने लोगों को ठगकर क्यों खाते हैं। इति

विवेकानन्द

(एक मुसलमान सज्जन को)

प्यारे मित्र,

आपके पत्र के लिये अनेक धन्यवाद। मुझे यह सुनकर परम परितोष हुआ कि ईश्वर हमारी मातृभूमि के लिये धीरे धीरे एक अपूर्व भविष्य गढ़ रहा है।

बात यह है कि अद्वैत ही—इसे हम चाहे वेदान्त कहें या और कुछ—धार्मिक विचारों का अन्तिम निर्णय है, और यही एक-मात्र भूमि है जहाँ से हम सभी धर्मों और सम्प्रदायों को प्रेम की दृष्टि से देख सकते हैं। हमारा विश्वास है कि यही भविष्य की सुशिक्षित मानव-जाति का धर्म होगा। और और जातियों से पहले ही इस तत्त्व का आविष्कार करने का श्रेय कदाचित् हिन्दुओं को ही है—क्योंकि वे यहूदी या अरब जाति से पुराने हैं—पर व्याव-हारिक अद्वैतवाद के—जिसमें एक मनुष्य सारी मनुष्यजाति को अपनी आत्मा समझता है और उसी विचार के अनुसार उससे व्यवहार भी करता है—हिन्दुओं के बीच सार्वजनीन रूप से प्रकट होने में अभी देर है।

दूसरे, हमारी यह अभिज्ञता है कि अपने नित्य प्रति के जीवन में यदि किसी धर्म के अनुयायी इस एकत्व के बहुत कुछ समीप पहुँचे हों—वे साधारणतया ऐसे आचरण के गूढ़ अर्थ और मौलिक तत्त्व को भले ही न जान पाए हों, जिन्हें प्रायः हिन्दू अच्छी तरह समझते हैं—तो वे इस्लाम और केवल इस्लाम के अनुगामी ही हैं।

इसलिये हमें दृढ़ विश्वास है कि जगत के करोड़ों साधारण लोगों के लिये, बिना इस्लाम की सहायता के वेदान्त के तत्त्वों का—वे चाहे जितने सूक्ष्म और अपूर्व हों—कुछ मूल्य नहीं। हम मानवजाति को उस ऊँचे स्थान तक ले जाना चाहते हैं जहाँ न वेद हैं, न बाइबिल, न कोरान। पर यह बात वेदों, बाइबिल और कोरान के बीच सामञ्जस्य के स्थापन द्वारा ही साधित करनी पड़ेगी। मनुष्य-जाति को सिखाना पड़ेगा कि सर्व धर्म एकत्वरूपी महाधर्म के ही विभिन्न प्रकाश मात्र हैं। इसलिये हरएक आदमी अपने लिये सबसे उपयोगी राह को खुशी से चुन ले सकता है।

अपनी मातृभूमि के लिये हिन्दूधर्म और इस्लाम इन दो महाधर्मों का—वैदान्तिक मस्तिष्क और इस्लामीय शरीर का—सम्मेलन ही एकमात्र आशास्थल है।

मनश्चक्षु से मैं देखता हूँ कि भविष्य का सर्वांगसम्पूर्ण भारत वर्तमान विश्रृंखला और द्वन्द्व को पार करता हुआ निकल रहा है—वह प्रतापी और अजेय है—और उसका मस्तिष्क वेदान्त से और शरीर इस्लाम से बना हुआ है।

ईश्वर से सदा मेरी प्रार्थना है कि मानवजाति की, विशेष कर हमारी गरीब, दीन मातृभूमि की सेवा के लिये वह आपको एक महान यन्त्र बना ले।

आपका स्नेही,

विवेकानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द को)

लन्दन,

१३ नवम्बर, १८९५

प्रिय अखण्डानन्द,

तुम्हारा पत्र पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। तुम जैसा काम कर रहे हो वह बहुत अच्छा है। रा—बड़े उदार और मुक्तहस्त हैं, पर इसलिये उनपर जुल्म न हो। श्रीमान्—का अर्थ-संग्रह करने का संकल्प अच्छा है पर, भैया, यह संसार बड़ा ही विचित्र है—काम-काञ्चन से पिण्ड छुड़ाना ब्रह्मा, विष्णु तक के लिये दुष्कर है। जहाँ रुपये-पैसे का सम्बन्ध है वहीं गड़बड़ होने की सम्भावना है। अतः मठ के लिये अर्थ-संग्रह इत्यादि का काम किसी को न करने देना। रा—को छोडकर भारतवर्ष के किसी दूसरे गृहस्थ को मैं अभी अपना खरा मित्र नहीं समझता हूँ। मेरे या हमारे नाम से कोई गृहस्थ मठ के लिये या किसी दूसरी बाबत चन्दा वसूल कर रहे हैं, यह सुनते ही उन पर सन्देह करना और उनका साथ न देना। विशेषकर गरीब गृहस्थ अपना अभाव दूर करने के लिये तरह तरह के बहाने किया करते हैं। अतएव यदि कभी कोई धनी, विश्वासी, भक्त और सहृदय गृहस्थ मठ आदि बनाने के लिये उद्योग करें, अथवा संग्रहीत अर्थ कोई धनी और विश्वासी गृहस्थ के पास जमा हो तो अच्छी बात, नहीं तो उससे अलग रहना। वरन् औरों को भी इस कार्य से मना करना। तुम अभी बालक हो, काञ्चन की माया नहीं समझते।

मौका मिलने पर अत्यन्त नीति-परायण मनुष्य भी प्रतारक बनता है। यही संसार है। रा—से रुपये-पैसे के बारे में कुछ न कहना। चार आदमी मिलकर कोई काम करना हमारी आदत ही नहीं। इसीलिये हमारी इतनी दुर्दशा हो रही है। जो हुक्म तामील करना जानते हैं, वे ही हुक्म देना भी जानते हैं। पहले आदेश-पालन करना सीखो। इन सब पाश्चात्य जातियों में स्वाधीनता का भाव जैसा प्रबल है, आदेशपालन करने का भाव भी वैसा ही प्रबल है। हम सभी अपने आपको बड़ा समझते हैं, इससे कोई काम नहीं बनता। महान उद्यम, महान साहस, महावीर्य और सबसे पहले महती आज्ञावहता—ये सब गुण व्यक्तिगत या जातिगत उन्नति का एकमात्र उपाय हैं। और ये गुण हममें हैं ही नहीं।

तुम जैसा काम कर रहे हो वैसा ही करते जाओ। परन्तु अपने विद्याभ्यास पर विशेष दृष्टि रखना। य—बाबू ने एक हिन्दी पत्रिका मुझे भेजी है। उसमें अलवर के पण्डित रा—ने मेरी शिकागो-वक्तृता का अनुवाद किया है। दोनों सज्जनों को मेरी विशेष कृतज्ञता और धन्यवाद ज्ञापित करना।

अब तुम्हारे लिये कुछ लिखता हूँ। राजपूताना में एक केन्द्र खोलने का विशेष प्रयत्न करना। जयपुर या अजमेर जैसी किसी सदर जगह में वह होना चाहिये। इसके बाद अलवर, खेतड़ी आदि शहरों में उसके शाखा-केन्द्र स्थापित करना। सबके साथ मिलना, किसीसे विरोध की आवश्यकता नहीं। पण्डित ना—

जी को मेरा प्रेमालिङ्गन देना, वे बड़े उद्यमी हैं, भविष्य में विशेष कार्यदक्ष होंगे। मा—साहब और—जी से भी मेरा यथोचित प्रीति-सम्भाषण कहना। धर्ममण्डली नाम की क्या एक संस्था अजमेर में कायम हुई है?—वह क्या है, मुझे सविशेष लिखना। य—बाबू लिखते हैं कि उन्होंने मुझे पत्र लिखे, पर वे मुझे अभी तक नहीं मिले। ....मठ आदि कलकत्ते में क्या बनाओगे? काशी में एक स्थान बनाना होगा। ऐसे बहुत संकल्प हैं—पर उनके लिये रुपये की ज़रूरत है। धीरे धीरे सब मालूम होंगे। तुमने अखबारों में देखा होगा कि इङ्गलैण्ड में धूम मचने की तैयारी हो रही है। यहाँ सभी काम धीरे धीरे होते हैं। परन्तु अंग्रेजों के पट्ठे एक बार जिस काम में हाथ डालते हैं उसे फिर नहीं छोड़ते। अमेरिकावासी बहुत फुर्तीले हैं सही, पर प्रायः फूस की आग की तरह होते हैं। रामकृष्ण परमहंस अवतार हैं, इत्यादि मत सर्वसाधारण में प्रचारित नहीं करना। ....—में मेरे कई चेले हैं, उनकी खबर रखना।....महाशक्ति तुममें आयेगी—डरो मत। पवित्र होओ, विश्वासी होओ, और आज्ञा-पालक होओ।

लड़कों के विवाह के विरुद्ध शिक्षा देना। लड़कों के विवाह का समर्थन किसी भी शास्त्र में नहीं है। पर छोटी छोटी लड़कियों के ब्याह के विरुद्ध अब कुछ मत कहना। लड़कों का ब्याह रोक दोगे तो लड़कियों का ब्याह भी अपने आप रुक जायगा। लड़की तो फिर लड़की से ब्याही नहीं जायगी। लाहौर आर्यसमाज के मंत्री को

लिखना कि अच्युतानन्द नाम के जो संन्यासी उनके साथ रहते थे वे अब कहाँ हैं? उनकी विशेष खोज करना।........डर क्या है?

तुम्हारा,

विवेकानन्द

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय।

१८९५

भाईयो,

इससे पहले मैंने तुमलोगों एक पत्र लिखा था। परन्तु समयाभाव से वह अपूर्ण ही रह गया।

हमारी जाति के लिये अब कोई आशा नहीं है। एक भी स्वाधीन चिन्ता किसीके मस्तिष्क में नहीं आती—सभी वही गई बीती बातों की उधेड़बुन में पड़े हुए हैं—रामकृष्ण परमहंस ऐसे थे, वैसे थे; वाहियात गप्पें उड़ाते हैं जिनका न ओर है, न छोर। अजी कुछ करके भी दिखाओ कि तुम असाधारण हो या ऐसा ही पागलपन करोगे। आज घण्टा बना, कल 'तुरहा' बना, परसो एक और चमर बनी; आज खाट बनी, कल खाट के पायों में चाँदी मढ़ी गई, और लोगों ने खिचड़ी-प्रसाद पाया, फिर लोगों से २०००० मुफ्त ही बैठे हुए किस्से कहानियाँ उड़ाते रहे—चक्रगदापद्मशंख और शंख-

गदापद्मचक्र, इसीको अंग्रेजी में Imbecility (शारीरिक और मानसिक बलहीनता) कहते हैं। जिनके मन में ऐसी ही फिजूल बातों के सिवा और कुछ नहीं आता उन्हींके लिये Imbecile शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। घण्टा दाहिनी ओर से बजाया जाय या बाईं ओर से, चन्दन की बिन्दी सिर में लगाई जाय या और कहीं, आरती तीन दफे उतारी जाय या चार दफे, ऐसे विषयों के लिये जो लोग दिनरात मगज़ पचाते रहते हैं उन्हींके लिये अभागा शब्द आया है। और इस तरह अक्ल के दुश्मन बन जाने के कारण ही हमारे घर में हण्डी नहीं चढ़ती—दूसरों की जूतियाँ सिर पर बरसती हैं; और यहाँवालों का तीनों लोक में विजय का डंका बज रहा है। आलस्य और वैराग्य में आकाश-पाताल का अन्तर है।

अगर भला चहो तो घण्टा-सण्टा गङ्गा में बहाकर साक्षात् भगवान नारायण की—नरदेहधारी हरएक मनुष्य की जाओ पूजा करो; वहीं विराट् और स्वराट् देखोगे। विराट्रूप यह संसार है—उसकी पूजा अर्थात् उसकी सेवा, इसीका नाम है कर्म, यह घण्टी पर चमर रखना नहीं है—और प्रसाद की थाली सामने रखकर दस मिनट बैठना चाहिये या आधा घण्टा—ऐसे विचार का नाम भी कर्म नहीं है, उसका नाम है पागलखाना। करोड़ों रुपये खर्च करके बनाये गये काशी और वृन्दावन के श्रीठाकुरघर के दरवाजे खुलते और बन्द होते रहते हैं। अब ठाकुरजी कपड़े बदलते हैं तो अब ठाकुरजी भोग पाते हैं, और अब ठाकुरजी निपूतों के बापदादों के

श्राद्ध में पिण्डा निगलते हैं, और इधर जीतेजागते ठाकुर अन्न बिना विद्या बिना मर रहे हैं। बम्बई के बनिये खटमलों के लिये अस्पताल खोलते हैं—मनुष्य चाहे मर जायँ! अरे, तुम लोगों में इतनी भी बुद्धि नहीं कि ये बातें समझो—हमारे देश को कठिन बीमारी हो गई है—देश नहीं, पागलखाना है........। वे आग की भाँति फैल जायँ—इसी विराट् की उपासना का प्रचार करें जो हमारे देश में कभी नहीं हुई। लोगों से लड़ने में क्या रखा है, सबसे मिलना होगा।

Idea (भाव) फैलाओ—गांव-गांव और घर-घर जाओ—तभी यथार्थ कर्म होगा। नहीं तो चित पड़े रहना ही है, और कभी कभी घण्टी हिलाना, यह एक व्याधिविशेष है। Independent (स्वाधीन) होओ—स्वाधीन बुद्धि खर्च करना सीखो—अमुक तन्त्र के अमुक पटल में घण्टी की डंडी की जितनी लम्बाई लिखी है उससे हमारा लाभ? प्रभु की इच्छा होगी तो करोड़ों तन्त्र, वेद और पुराण तुमलोगों के मुँह से आप निकल जायँगे। यदि काम करके दिखा सको—यदि एक साल के भीतर २।४ लाख शिष्य भारत में जगह जगह कर सको—तो समझें कि हाँ तुम कुछ हो।

सिर घुटाकर जो छोकड़ा बम्बई से रामेश्वर तक गया था वह कहता है, मैं रामकृष्ण परमहंस का शिष्य हूँ। न जान, न पहचान। वाह! क्या यह भी कोई दिल्लगी है? गुरुपरम्परा के बिना कोई काम सिद्ध नहीं होता, क्या यह भी लड़कों का खिलवाड़ पा लिया? कहाँ का मारा हुआ आया और कह दिया, मैं रामकृष्ण परमहंस का

शिष्य हूँ। शिष्य नहीं खाक है। वह ठीक ठीक राह पर न चले तो दूर कर देना। गुरुपरम्परा अर्थात् वही शक्ति जो गुरु से शिष्यों में आती है, फिर उनके शिष्यों में जाती है, बिना इसके कुछ होने का नहीं। कहाँ का मारा आया और 'मैं रामकृष्ण का शिष्य हूँ!' क्या यह लड़कों का खिलवाड़ हो गया? मुझे जगमोहन ने कहा था कि एक आदमी कहता है, मैं उनका गुरुभाई हूँ। मैं भांप गया, यह वही छोकड़ा है। गुरुभाई? हाँ चेला बतलाने में लाज लगती होगी! एकदम गुरु बन जाना चाहता है! दूर कर देना यदि नियमानुसार राह पर न चले।

और जो तुलसी और सुबोध के मन में अशान्ति है, सो इसका कारण कामकाज न रहना ही है। गांव-गांव में जाओ, लोकहित—संसार का कल्याण करो। खुद नरक में भी जाओ पर दूसरों की मुक्ति हो, अपनी मुक्ति का नाम भी न लेना। अपने लिये जभी कुछ सोचोगे तभी मन को अशान्ति होगी। क्यों महाराज, तुम्हें शान्ति की जरूरत? सब तो त्याग किया और अब शान्ति की इच्छा रखते हो? करो तो भला शान्ति तक का त्याग। कोई भी चिन्ता न रखना। नरक, स्वर्ग, भक्ति या मुक्ति सब don't care (तुच्छ समझो)। घर घर नाम देते तो फिरो मेरे महाराज। अपना भला दूसरों का भला सोचने ही से होता है। अपनी मुक्ति और भक्ति दूसरों की मुक्ति और भक्ति से होती हैं। इसीमें लग जाओ, पागल हो जाओ। जिस तरह श्रीरामकृष्ण तुम्हें प्यार करते थे—जिस तरह मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, उसी तरह करो तो संसार को प्यार।

सबको एकत्र करो। गुणनिधि कहाँ है? उसे तुमलोग अपने पास ले आना। उसे मेरा अनन्त प्रेम। गुप्त कहाँ है? वह आना चाहे तो आये। मेरा नाम लेकर उसको बुला लाओ। ये कुछ बातें याद रखना:—

१. हमलोग संन्यासी हैं, हमारे लिये है भक्ति-भुक्ति-मुक्ति सब का त्याग चाहिए।

२. संसार का कल्याण करना—चाण्डाल तक का कल्याण करना, यही हमारा व्रत है। इससे मुक्ति हो, चाहे नरक में जाना पड़े।

३. रामकृष्ण परमहंस संसार के कल्याण के लिये ही आये थे। फिर उन्हें मनुष्य कहो, ईश्वर कहो या अवतार कहो, अपने अपने भाव से ग्रहण कर लेना।

४. जो उन्हें नमस्कार करेगा वह उसी समय सोना हो जायगा। यही समाचार लेकर घर घर जाओ तो महाराज, सब अशान्ति जाती रहेगी। भय न करना—भय का स्थान है कहाँ? तुमलोग कुछ चाहते तो हो नहीं, यदि इतने दिनों तक उनके नाम और अपनी सच्चरित्रता का चारों ओर विस्तार किया तो अच्छा किया; पर अब organised (संघबद्ध) होकर फैलो, प्रभु तुम्हारे साथ हैं, भय क्या है?

मैं मरूँ या बचूँ, देश जाऊँ या न जाऊँ, तुमलोग फैल जाओ और प्रेम का वितरण करो। गुप्त को भी इस काम में लगाना। परन्तु याद रहे, दूसरे को मारने के लिये ढाल-तलवार चाहिये—"सन्निमित्ते

वरं त्यागो विनाशे नियते सति।" (जबकि मृत्यु अवश्य ही होगी तो सत् विषय में देह का त्याग होना ही अच्छा है।) इति—

पुनः—पहले की चिट्ठी याद रखना—स्त्री और पुरुष दोनों की ज़रूरत है, आत्मा में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं, उन्हें अवतार कहने ही से नहीं होता,—शक्ति का विकास चाहिये—हज़ारों पुरुषों और स्त्रियों की अपेक्षा है जो आग की तरह हिमालय से कन्याकुमारी, उत्तरमेरु से दक्षिणमेरु तक, तमाम दुनिया में फैल जायँ। लड़कों के खेल से काम न होगा—खिलवाड़ का समय नहीं रहा—जो खिलवाड़ करना चाहते हैं वे अब इसी समय अलग हो जायँ; नहीं तो वे विपत्ति में पड़ेंगे। Organisation (संघबद्ध होना) चाहिये। आलस्य का तिरस्कार करो, फैलो, फैलो, आग की तरह सब जगह फैल जाओ। मुझ पर भरोसा न रखना। मैं मरूँ या बचूँ, तुमलोग फैलो —फैलो। इति।

विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को)

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय।

अमेरिका १८९५

प्रिय राखाल,

अब अखबार आदि का ढेर हो गया है, और भेजने की ज़रूरत नहीं, हलचल अब भारत ही में मचती रहे।....पर सारे देश में यह

जो हलचल मची हुई है उसीके सहारे चारों तरफ फैल जाओ, यानी विभिन्न स्थानों में शाखा स्थापित करने की कोशिश करो। यह सिर्फ झूठी आवाज़ ही न हो। मद्रासियों से मिलकर जगह जगह सभा आदि स्थापित करनी चाहिये।...जरा बहादुरी तो दिखाओ। भाई, मुक्ति न हुई तो न सही; क्या हर्ज अगर दो चार बार नरक-कुण्ड में जाना पड़ा? क्या यह उक्ति झूठी है—

> मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः
> त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
> परगुणपरमाणु पर्वतीकृत्य नित्यम्
> निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥

—"कितने ही ऐसे साधु हैं जो मन-वचन-कर्म से पुण्यरूपी अमृत से भरे हैं; जो भाँति भाँति की सेवाओं से तीनों भुवनों को पवित्र कर देते हैं; दूसरे का गुण रत्ती भर होने पर भी उसे बढ़ा चढ़ाकर पहाड़ सा कर लेते हैं और इसी तरह अपने हृदय का विकास-साधन करते हैं।"

तुम्हें मुक्ति नहीं मिली तो क्या हुआ? कैसी बच्चों की सी बातें करते हो! राम! राम! फिर 'नहीं नहीं' करते करते क्या साँप का विष भी क्षीण नहीं हो जाता? 'मैं कुछ नहीं जानता हूँ', 'मैं कुछ नहीं हूँ'—यह सब कहाँ का विनय हुआ? क्या यह वैराग्य है? वैसे दीन-हीन भाव को बिलकुल हटाना होगा। 'मैं नहीं जानता तो

कौन जाने?'—यही यथार्थ भाव है। तुम जानते नहीं तो इतने दिन क्या किया? वे सब नास्तिकों की उक्तियाँ हैं—अभागों का विनय है। हम सब कुछ कर सकते हैं और सब कुछ करेंगे। जिसके भाग्य में बदा होगा वह हमारे साथ गरजते हुए चला आयेगा; शेष अभागे बिल्ली की तरह एक कोने में बैठकर म्यु म्यु करते रहेंगे।—कहता है, "हलचल तो खूब मची, बस अब घर लौट आओ।" —को मैं मर्द कहता यदि एक मकान बनाकर मुझे बुला सकता। दस वर्ष से ऐसी ऐसी करतूतों को देखकर मैं सयाना हो गया हूँ। अब बातें बनाने से काम नहीं चलेगा। जिसके मन में साहस और दिल में प्रेम है वह मेरे साथ आये, बाकी किसीको मैं नहीं चाहता हूँ। माँ की कृपा से मैं अकेला एक लाख हूँ—बीस लाख हूँगा।....मेरा देश को लौटना अनिश्चित है। वहाँ भी घूमना है और यहाँ भी, पर यहाँ पण्डितों का संग है और वहाँ मूर्खों का—इतना ही स्वर्ग-नरक का भेद है। यहाँ के लोग इकट्ठे होकर काम करते हैं और हमारे सारे काम 'वैराग्य' (यानी सुस्ती), द्वेष आदि के बीच में पड़कर चूर चूर हो जाते हैं।

—बीच बीच में एक एक लम्बा खत लिखता है—जिसका आधा तो मैं पढ़ ही नहीं सकता। यह मेरे लिये बहुत खैरियत हुई; क्योंकि इसके अधिकांश समाचार इस डौल के हैं—"अमुक—की दूकान पर बैठकर अमुक—आप के विरुद्ध ऐसी ऐसी बातें कह रहा था, और मैं सहन न कर सकने के कारण उससे झगड़ा।" मेरा

पक्ष लेने के लिये उसे अनेक धन्यवाद। पर मेरे विषय में कौन क्या कह रहा है उसे सविस्तार सुनने की विशेष बाधा यह है कि "स्वल्पश्च कालो बहवश्च विघ्ना"—"समय तो थोड़ा है पर विघ्न बहुत।"

एक संघ-बद्ध समिति चाहिये। शशी घर का काम सम्भाले, सन्याल रुपये पैसे और बाजार का भार ले, शरद मन्त्री बने, यानी पत्र-व्यवहार आदि करे। एक स्थान बनाओ। क्या व्यर्थ का गड़बड़ कर रहे हो। समझे अखबारों का ढेर हो गया है, अब तुम्हें कुछ करने की बारी आई है। यदि एक मठ बना सको तो तुम्हें बहादुर कहूँ, नहीं तो तुम किस काम के ठहरे? मद्रासियों से सलाह कर कार्य करना। उनमें कार्य करने की बहुत शक्ति है।

मैं अँगरेजी में एक अति संक्षिप्त रामकृष्ण-चरित लिखकर भेजता हूँ। उसे छापकर और उसका बंगानुवाद कराकर महोत्सव में बेचना। मुफ्त बाँटने से कोई नहीं पढ़ता, थोड़ा मूल्य नियत करना। महोत्सव खूब धूमधाम से करना।

सब दिशाओं को देखने भालनेवाली बुद्धि चाहिये, तभी काम होता है। जिस गांव या कसबे में जाओगे, जहाँ पर दस बीस आदमी परमहंसदेव की श्रद्धा-भक्ति करते हो, वहीं एक एक सभा स्थापित करना। इतने गांवों की फेरी लगाकर क्या खाक किया? हरि-सभा आदि संस्थाओं को धीरे धीरे अपने में मिला लेना चाहिये। क्या कहूँ तुमसे? अगर एक दूसरा भूत मुझ जैसा मिलता। प्रभु ठीक समय पर सब कुछ मिला देंगे। यदि शक्ति हो तो उसका

विकास दिखाना चाहिये।........मुक्ति, भक्ति आदि के भावों को त्याग दो। यही एक राह दुनिया में है—परोपकाराय हि सतां जीवितं, परार्थं प्राज्ञः उत्सृजेत्—साधुओं का जीना सिर्फ परोपकार के लिये है; पण्डित व्यक्ति को दूसरों के लिये त्याग करना चाहिये। तुम्हारा हित करने से ही मेरा हित होगा, दूसरा उपाय और है ही नहीं—बिलकुल नहीं।........तुम्हीं भगवान हो, मैं भी भगवान हूँ। मनुष्य भगवान ही दुनिया में सब कुछ कर रहे हैं। दूसरा कोई भगवान किसी पेड़ पर चढ़ा थोड़े ही बैठा है? इसलिये काम में लग जाओ।

पोथी पढ़कर विमला ने जान लिया है कि इस दुनिया में जितने लोग हैं सभी अपवित्र हैं और उनकी प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि उनसे धर्म होने का नहीं; सिर्फ भारतवर्ष में जो मुट्ठीभर ब्राह्मण हैं उन्हींको धर्मलाभ सम्भव है। फिर उनमें से शशी (सन्याल) और विमला चन्द्र आर सूर्य हैं। शाबाश! क्या ही जोरदार धर्म है! विशेष कर बङ्गाल में वह धर्म बड़ा ही सहज है। वैसा सीधा रास्ता और दूसरा हो ही नहीं सकता! तप जप आदि का सारा सिद्धान्त यही हुआ कि मैं पवित्र हूँ, और सभी अपवित्र हैं! यह तो पैशाचिक धर्म, राक्षसी धर्म, नरकीय धर्म है। यदि अमेरिका के लोगों को धर्म नहीं मिल सकता, यदि इस देश में धर्म-प्रचार करना ठीक नहीं, तो उनकी सहायता लेने की क्या जरूरत? इधर तो अयाचित वृत्ति की धूम और उधर तमाम पोथी में यह रोना कि कोई मुझे

कुछ नहीं देता ! विमला ने निर्णय किया है कि जब भारत भर के लोग शशी (सन्याल) और विमला के चरणों में धन का ढेर नहीं लगाते तब तो भारत का सर्वनाश का समय आगया है। कारण कि शशी बाबू सूक्ष्म व्याख्या से अवगत हैं और विमला उसे पढ़कर निश्चितरूप से जान गये हैं कि अपने सिवा इस पृथ्वी में दूसरा कोई पवित्र नहीं है। इस मर्ज की क्या दवा ? भला, शशी बाबू मालाबार क्यों नहीं जाते ? वहाँ के राजा ने सारी प्रजा की जमीन छीन लेकर ब्राह्मणों के चरणों में अर्पण कर दी है। गांव गांव में बड़े बड़े मठ हैं—चर्व्य चोष्य भोजन, फिर नकद भी।........ भोग के समय अब्राह्मण जातियों के स्पर्श से दोष नहीं होता—भोग समाप्त हुआ कि स्नान करो, क्योंकि ब्राह्मणों को छोड़ शेष जातियाँ अपवित्र हैं—दूसरे समय उनके स्पर्श से भी बचना चाहिये। दुराचारी साधुसंन्यासियों और ब्राह्मणों ने देश को जहन्नुम में ढकेल दिया है। 'देहि देहि चोरी बदमाशी'—इनकी रट है, फिर ये हुए धर्म के प्रचारक ! वे पैसे लेंगे, सर्वनाश करेंगे, और कहते हैं, "मत छुओ, मत छुओ।" काम तो इनके बड़े भारी हैं !—"यदि आलू और भंटे एक साथ हुए तो ब्रह्माण्ड को रसातल पहुँचने में कितनी देर लगेगी ?", "चौदह बार हाथ पर मिट्टी न लीपने से चौदह पुर्खे नरक को जाते हैं या चौबीस ?"—इन सब कठिन प्रश्नों की वैज्ञानिक व्याख्यायें महाराज आज दो हजार वर्ष से कर रहे हैं ! इधर देश के एक-चौथाई लोग भूखों मर रहे हैं। आठ वर्ष की लड़की से तीस वर्ष के एक जवान का व्याह कराकर लड़की

के मातापिता फूले न समाते। छः वर्ष की लड़की के गर्भाधान की जो महाशय वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं उनका धर्म कैसा है? फिर बहुत लोग इस प्रथा के लिये मुसलमानों पर दोष मढ़ते हैं। क्यों जी मुसलमानों का ही दोष है न!! सब गृह्यसूत्रों को पढ़कर तो देखो कि जब तक "हस्तात् योनिं न गूहति" तभी तक कन्या है। इसके पूर्व ही उसका व्याह कर देना चाहिये। सारे गृह्यसूत्रों की यही आज्ञा है।

वैदिक अश्वमध-यज्ञ के आचारों को याद करो—"तदनन्तरं महिषीं अश्वसन्निधौ पातयेत्" इत्यादि। फिर होता, पोतः, ब्रह्मा, उद्गाता आदि बेडौल मतवाले होकर खराबी करते थे। जानकीजी वन को भेजी गई थीं और राम ने अकेले अश्वमेध किया, यह सुनकर मुझे बड़ा चैन हुआ।

यह बात सभी ब्राह्मणों में है और सभी टीकाकारों ने इसे मान भी लिया है। वे इसे इनकार करें भी तो कैसे?

इन बातों से मेरा मतलब यही है कि प्राचीन काल में बहुत अच्छी अच्छी चीज़ें भी थीं और बुरी चीज़ें भी। अच्छी चीज़ों को रखना होगा, पर भविष्य भारत प्राचीन भारत से कहीं उन्नत होगा। जिस दिन श्रीरामकृष्ण ने जन्म लिया है उसी दिन से वर्तमान भारत का—सत्ययुग का—आविर्भाव हुआ है। तुम इस सत्ययुग का उद्बोधन करो। इसी विश्वास को लेकर कार्यक्षेत्र में उतर पड़ो।

इसीलिये जभी तुम कहते हो कि रामकृष्ण अवतार हैं और साथ ही कहते हो कि हम कुछ नहीं जानते, तभी मैं कहता हूँ कि तुम मिथ्यावादी और चोर हो—बिलकुल झूठे हो। यदि रामकृष्ण परमहंस सत्य हुए तो तुम भी सत्य हो। पर तुम्हें यह काम में दिखाना होगा।....तुम सब में महाशक्ति है, लेकिन नास्तिकों में कुछ नहीं है। जो आस्तिक हैं वे वीर हैं; उनमें ऐसी महाशक्ति का विकास होगा कि दुनिया बह जायगी। "दया दीन-उपकार।" मनुष्य भगवान हैं—नारायण हैं। आत्मा में स्त्री-पुरुष-नपुंसक तथा ब्रह्म-क्षत्र आदि का भेद नहीं है। ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सब नारायण हैं। केवल कीड़े में विकास कम है और ब्रह्मा में अधिक। जो कार्य जीव को अपने ब्रह्मभाव को विकसित करने में सहायता दे वही सत्कार्य है और जिससे उसमें बाधा पहुँचे वही असत् कार्य है।

हमारे ब्रह्मभाव को विकसित करने का एकमात्र उपाय है दूसरों को वैसा करने में मदद देना।

यद्यपि संसार में विषमता है तथापि सबके लिये समान सुभीता रहना चाहिये। अथवा, यदि किसीके लिये अधिक और किसी के लिये कम सुभीता हो तो निर्बलों को सबलों की अपेक्षा अधिक सुभीता देना चाहिये।

अर्थात् चण्डाल के लिये विद्यालाभ करना जितना आवश्यक है, ब्राह्मण के लिये उतना नहीं। यदि ब्राह्मण के लड़के को एक शिक्षक चाहिये तो चण्डाल के लड़के को दस शिक्षक, क्योंकि जिसे प्रकृति

ने स्वाभाविक प्रखरता नहीं दी है उसे अधिक सहायता देनी चाहिये। धनिकों को धन देना बौरापन है। गरीब, पददलित, मूर्ख—ये तुम्हारे ईश्वर हों।

एक भारी दलदल सामने है। सावधान रहना, क्योंकि उसी में फँसकर सब मर जाते हैं। वह दलदल यही है कि हिन्दुओं का (आजकल का) धर्म न वेदों में है, न पुराणों में, न भक्ति में, न मुक्ति में—धर्म घुसा है भात की हण्डियों में! अब का हिन्दूधर्म न तो विचार-मार्ग में है और न ज्ञान-मार्ग में—वह है "छूत-मार्ग" में! 'मुझे मत छुओ'—'मुझे मत छुओ'—बस। इस घोर बीभत्स छूत-मार्ग में फँसकर जान से हाथ मत धोओ। क्या "आत्मवत् सर्वभूतेषु" सिर्फ पोथियों में ही रहेगा? जो लोग रोटी का एक टुकड़ा गरीबों के मुँह में नहीं डाल सकते, वे फिर मुक्ति क्या पत्थर देंगे! जो दूसरों की सांस से अपवित्र हो जाते हैं, वे फिर औरों को क्या पवित्र करेंगे? छूत मार्ग एक तरह का मानसिक रोग है। सतर्क रहना। विस्तार ही जीवन है और सङ्कोच मृत्यु। प्रेम ही विस्तार है और स्वार्थपरता सङ्कोच। अतः प्रेम ही जीवन का एकमात्र नियम है। जो प्रेमी है वही जीता है, और जो स्वार्थपर है वह मर रहा है। इसलिये निष्काम प्रेम करो, क्योंकि जीवन का यही एकमात्र नियम है, जैसे जीने के लिये तुम्हारा सांस लेना। निष्काम प्रेम और कर्म आदि का यही रहस्य है। शशी (सन्याल) का कुछ उपकार अगर कर सको तो कोशिश करना। वे बड़े सज्जन और निष्ठावान हैं पर उनका

दिल छोटा है। दूसरों के दुःख से कातर होने का सौभाग्य सबको प्राप्त नहीं है। हे प्रभु, हे प्रभु, सब अवतारों में चैतन्य प्रभु बड़े थे पर उनमें (प्रेम की तुलना में) ज्ञान का अभाव था। रामकृष्णावतार में ज्ञान, भक्ति, प्रेम सब हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त कर्म और जीवों पर अनन्त दया। तुम अभी उनको समझ नहीं सके। "श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्"—इनके विषय में सुनकर भी कोई इन्हें नहीं जान सकता।" सारी हिन्दू जाति ने युगों में जो बात सोची है उन्होंने एक ही जीवन में उसे कार्यरूप में परिणत किया था। उनका जीवन सभी जातियों के धर्मग्रन्थों के सजीव भाष्य-स्वरूप था। लोग यह बात धीरे धीरे समझेंगे। मेरा पुराना बोल है—जी खोलकर प्रयत्न करो, जब तक सत्य का प्रकाश न हो। आगे बढ़ो।

तुम्हारा दास,

विवेकानन्द

युक्तराज्य, अमेरिका

१८९५

प्रिय—

.... देश को लौटने की बात जो तुमने लिखी है वह ठीक ही है, पर यहाँ एक बीज रोपा गया है—एकाएक चले जाने से उसके अंकुर ही में नष्ट हो जाने की सम्भावना है, इसीलिये

जाने में कुछ देर होगी। और यहाँ से सब काम अच्छी तरह हो सकेगा।—आदि सभी मुझे घर लौटने के लिये लिखते हैं। बात तो ठीक है, पर भैया, दूसरों का भरोसा रखना बुद्धिमानी नहीं है। अपने पैरों के बल चलना ही बुद्धिमानों का काम है। सब कुछ धीरे धीरे हो जायगा; अभी एक जगह ढूँढ़ने की बात मत भूलना। एक बहुत बड़ी जगह चाहिये—दस हजार से बीस हजार तक की—जो एकदम गंगा किनारे हो। यद्यपि हाथ में रुपया कम है, तो भी दिल बहुत बड़ा है; जगह का ख्याल छोड़ना नहीं। एक न्यूयार्क में, एक कलकत्ते में, एक मद्रास में—अब ये तीन अड्डे चलाने होंगे, आगे धीरे धीरे प्रभु जैसा जुटायें।........—देश-भ्रमण के लिये उत्सुक है—अच्छी बात, पर ये देश बहुत महँगे हैं, हजार रुपये मासिक से कम यहाँ निर्वाह नहीं होता (धर्मप्रचारक का)। पर—की छाती में बल है और खुदा देनेवाला है—यह भी ठीक है। लेकिन हाँ, उन्हें अपनी अंग्रेजी को जरा दुरुस्त करना होगा। बात यह है कि यहाँ के बाघ और भालू जैसे पादड़ी पण्डितों के मुँह की रोटी छीनकर खानी होगी—यही समझो। अर्थात् विद्या-बल से इनको दबा देना होगा, नहीं तो ये तुमको फूंक से उड़ा देंगे। यहाँ के लोग न साधु को समझते हैं, न संन्यास को और न त्याग-वैराग्य ही को; समझते हैं सिर्फ विद्या की धार, वक्तृता की धूम और असीम उद्योग। इसके सिवा देशभर के लोग ऐब की तलाश में रहेंगे—पादड़ी लोग चौबीस घण्टे छल और बल से दबाने की चेष्टा करेंगे—इन सब विपत्तियों को झेलकर अपना मत चलाना

होगा। जगदम्बा की इच्छा से सभी सम्भव है। परन्तु मेरी राय में यदि पञ्जाब या मद्रास में घूमकर कई सभाएँ आदि स्थापित करें और तुम लोग मिलकर संघबद्ध हों तो बहुत ही अच्छा होगा। नये रास्ते ढूँढ़ निकालना बड़ा काम है सही, पर उनको साफ करना और चौड़े और सुन्दर बनाना भी कठिन काम है। मैं जहाँ जहाँ प्रभु के भाव के बीज रोप आया हूँ, यदि तुम लोग उन स्थानों में कुछ दिन रहकर उन बीजों को वृक्षरूप में परिणत कर सको तो मुझसे भी कहीं अधिक काम तुम लोग कर पाओगे। जो वर्तमान स्थिति को संभाल नहीं सकते वे भविष्य में क्या करेंगे? पकी-पकाई रसोई में यदि ज़रा नमक-मिर्च न डाल सको, तो कैसे विश्वास हो कि सब सामान बटोर लोगे? अथवा—अल्मोड़े में हिमालय के वक्ष में एक मठ स्थापित करें जहाँ एक पुस्तकालय भी हो और हम लोग कुछ देर तक एक ठण्डी जगह मे ठहरें और साधना करें। खैर, प्रभु जिसे जैसी बुद्धि देते हैं उस पर मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? वरन् Godspeed—शिवा वः सन्तु पन्थानः (शुभ हो, तुम्हारा मार्ग कल्याणकर हो।)........मैं क्षुद्र जीव हूँ, पर प्रभु का ऐश्वर्य अनन्त है—डरो मत, डरो मत—देखो कि विश्वास न टले।........प्रभु बहुत ही जल्द सब प्रबन्ध कर देंगे।........डरो मत। खूब आनन्द करो—भला, प्रभु के शरणागतों का विनाश कैसा? मूर्ख कहीं के!

सदा के लिये अभिन्न-हृदय

विवेकानन्द

१८९५ ई०.

प्रिय—

तुम्हारा एक पत्र मुझे कल मिला, उससे थोड़ा थोड़ा समाचार ज्ञात हुआ—सविशेष कुछ नहीं मिला। मेरा शरीर अब बहुत अच्छा है। इस वर्ष की प्रचण्ड शीत प्रभु की कृपा से कुछ भी नहीं लगी। कैसी भयंकर शीत है! तथापि ये लोग वैज्ञानिक विद्या के बल से उसे दबा रखते हैं। हरएक मकान के नीचे का भाग जमीन के भीतर गड़ा रहता है, उसमें प्रकाण्ड बायलर हैं—वहाँ से स्टीम या गरम भाप घर घर में रातदिन जाती रहती है। उसीसे सारा मकान गरम रहता है। पर इसमें एक दोष यह है कि घर के अन्दर गरमी और बाहर इतनी ठण्डक कि शून्य के नीचे ३०।४० डीग्री पर पारा!

इस देश के अमीरों में से बहुत से लोग जाड़े में योरोप भाग जाते हैं—योरोप इससे थोड़ा गरम प्रदेश है।

खैर, अब तुम्हें कुछ उपदेश देता हूँ। यह पत्र तुम्हारे लिये ही लिखा जाता है। तुम इन उपदेशों को रोज एक बार पढ़ना और उसी तरह काम करना।

र—का पत्र मिला है,—वे उत्तम कार्य कर रहे हैं। परन्तु इस समय Organisation (संघबद्ध होकर काम करना) चाहिये। ....तुम्हें मेरे ये थोड़े से उपदेश देने का कारण यह है कि तुममें संघ-गठन और परिचालन-शक्ति मौजूद है—यह बात श्रीरामकृष्ण

वे मुझसे अभी कही है; पर वह शक्ति अभी तक विकसित नहीं हुई। शीघ्र ही उनके आशीर्वाद से विकसित होगी। तुम जो किसी तरह भारकेन्द्र (Centre of gravity) नहीं छोड़ना चाहते हो*— यही उसका निदर्शन है। गम्भीर और उदार दोनों ही होना चाहिये।

१. इस संसार में जो त्रिविध दुःख हैं, सर्व शास्त्रों का सिद्धान्त यही है कि वे नैसर्गिक नहीं हैं, अतः दूर हो सकते हैं।

२. बुद्धावतार में भगवान कहते हैं कि इस आधिभौतिक दुःख का कारण जाति ही है, अर्थात् जन्मगत, गुणगत या धनगत सब तरह जाति इन दुःखों का कारण है। आत्मा में स्त्री, पुरुष, वर्णाश्रमादि का भाव नहीं है, और जैसे कीचड़ के द्वारा कीचड़ नहीं धोया जाता वैसे ही भेद बुद्धि द्वारा अभेद साधन होना बिलकुल असम्भव है।

३. कृष्णावतार में वे कहते हैं सब प्रकार के दुःखों का कारण अविद्या ही है। निष्काम कर्म के द्वारा चित्त शुद्ध होता है; परन्तु 'किं कर्म किमकर्मेति' इत्यादि।

४. जिस कर्म के द्वारा इस आत्मभाव का विकास होता है वही कर्म है और जिसके द्वारा अनात्मभाव का विकास होता है वही अकर्म है।

५ अतएव व्यक्तिगत, देशगत और कालगत परिस्थिति के अनुसार कर्म या अकर्म का निर्णय होना चाहिये।

---

* इसका तात्पर्य यह कि तुम इधर उधर न घूम कर एक ही जगह रहना पसन्द करते हो।

६. यज्ञादि प्राचीनकाल में उपयोगी थे, तथा जातिगत कर्म भी। पर वर्तमान काल के लिये वैसा नहीं है।

७. रामकृष्ण अवतार में ज्ञान रूपी असि से नास्तिकता रूपी म्लेच्छों का निधन होगा, और भक्ति तथा प्रेम से समस्त जगत एक हो जायगा। अपिच इस अवतार में रजोगुण यानी नाम यश आदि की आकांक्षा बिलकुल ही नहीं है, अर्थात् जो उनके उपदेश ग्रहण करेगा वही धन्य होगा, उन्हें माने या न माने, कोई परवा नहीं।

८ प्राचीन काल में या आधुनिक समय में सम्प्रदायवालों ने भूल नहीं की। उन्होंने अच्छा ही किया, पर उन्हें और अच्छा करना होगा। कल्याण—कल्याणतर—कल्याणतम।

९. अतएव सब लोग जिस स्थान पर हैं वही उन्हें ग्रहण करना होगा, अर्थात् किसी के भाव में आघात न कर उसे उच्चतर भाव में ले जाना होगा। तथा सामाजिक परिस्थिति वर्तमान में जो है वह उत्तम है, पर वह उत्कृष्टतर, उत्कृष्टतम होगी।

१०. स्त्रीजाति के अभ्युदय के बिना जगत के कल्याण की सम्भावना नहीं, एक पंख से पक्षी का उड़ना असम्भव है।

११. इसीलिये रामकृष्णावतार में 'स्त्री-गुरु' का ग्रहण, इसीलिये नारी का साधन और इसी के लिये मातृभाव का प्रचार हुआ।

१२. इसीलिये स्त्री-मठ की स्थापना के लिये मेरा प्रथम उद्योग है। वह मठ गार्गी, मैत्रेयी तथा उनसे भी उच्चतर भावापन्न नारी-जाति का आकर स्वरूप होगा।

१३. चालाकी के द्वारा कोई महत् कार्य नहीं होता। प्रेम, सत्यानुराग और महावीर्य की सहायता से सारे कार्य सम्पन्न होते हैं। तत् कुरु पौरुषम् (अतएव पुरुषार्थ प्रकट करो)।

१४. किसीके साथ वादविवाद की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे पास सिखलाने के लिये जो कुछ है, वह सिखलाओ, दूसरे को अपने अपने भाव लेकर रहने दो। 'सत्यमेव जयते नानृतम् तदा किं विवादेन?' 'सत्य की ही विजय होती है, मिथ्या की हरगिज नहीं; तो फिर विवाद की ज़रूरत क्या?'

बाल्योचित सरलता और गम्भीर भाव धारण करना, सबके साथ मिलजुलकर चलना, अहंभाव दूर करना और साम्प्रदायिक भाव छोड़ देना। वृथा तर्क महापाप है। इति—

तुम्हारा ही
विवेकानन्द

(मि० फ्रैन्सिस लेगेट को)

६३, सेंट जार्जेस रोड,
लन्दन, दक्षिण-पश्चिम।
६ जुलाई, १८९६

प्रिय फ्रैन्सिस,

........ऐटलान्टिक महासागर के इस पार मेरा कार्य बहुत अच्छी रीति से चल रहा है।

मेरी रविवार की वक्तृताएँ बहुत सफल हुईं। काम का मौसम खतम हो चुका है और मैं भी बहुत थका हुआ हूँ। अब मैं मिस मूलर के साथ स्विजरलैण्ड की सैर के लिये जाता हूँ। गालसवर्दी परिवार ने मेरे साथ बड़ा सदय व्यवहार किया है। जो (Goe) बड़ी चतुरता से उनको मेरी तरफ लाई। उनकी चतुरता और शान्ति-पूर्ण कार्यशैली की मैं मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ। वे एक राजनीति कुशल महिला कही जा सकती हैं। वे एक राज चला सकती हैं। मनुष्य में ऐसी प्रखर पर शुद्ध बुद्धि मैंने विरले ही देखी है। अगली शरद्-ऋतु में मैं अमेरिका लौटूँगा और वहाँ का कार्य फिर आरम्भ करूँगा।

परसों रात को मैं मिसेज़ मार्टिन के यहाँ एक पार्टी में गया था। इनके सम्बन्ध में तुमने अवश्य ही जो (Goe) से बहुत कुछ सुना होगा।

इंग्लैण्ड में मेरा कार्य चुपके से पर निश्चित रूप से बढ़ रहा है। यहाँ के प्रायः आधे पुरुषों या स्त्रियों ने, मेरे पास आकर मेरे कार्य के सम्बन्ध में आलोचना की है। ब्रिटिश साम्राज्य के कितने ही दोष क्यों न हों, पर भाव-प्रचार का ऐसा उत्कृष्ट यंत्र अब तक कहीं नहीं हुआ है। मैं इस यंत्र के केन्द्रस्थल में अपने विचार रख देना चाहता हूँ, बस तभी वे सारी दुनिया में फैल जायँगे। यह सच है कि सभी बड़े काम बहुत धीरे से होते हैं, और उनकी राह में असंख्य विघ्न उपस्थित होते हैं—विशेष कर इसलिये कि हम हिन्दू

पराधीन जाति हैं। लेकिन इसी पिछले कारण से हमें सफलता अवश्य मिलेगी, क्योंकि आध्यात्मिक आदर्शसमूह सदा पद-दलित जातियों में से ही पैदा हुए हैं। यहूदियों ने अपने आध्यात्मिक आदर्शों से रोम-साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया था। तुम्हें यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि मैं भी दिनोंदिन धैर्य, और विशेष-कर सहानुभूति के सबक सीख रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि 'महा-महिम' ऐंग्लोइण्डियनों तक के भीतर मैं परमात्मा को प्रत्यक्ष कर रहा हूँ। मेरा ख्याल है कि मैं धीरे धीरे उस अवस्था की ओर बढ़ रहा हूँ जहाँ खुद शैतान को भी—अगर वह रहा हो तो—मैं प्यार कर सकूँगा।

बीस वर्ष की अवस्था में मैं ऐसा असहिष्णु और कट्टर था कि किसीसे सहानुभूति नहीं कर सकता था। कलकत्ते में रास्तों के जिस किनारे पर नाचघर हैं, उस किनारे से ही नहीं चलता था। अब तैंतीस वर्ष की उम्र में मैं वेश्याओं के साथ एक ही मकान में ठहर सकता हूँ—उनसे तिरस्कार का एक शब्द कहने का विचार भी मेरे मन में नहीं आयेगा। क्या यह अधोगति है? अथवा मेरा हृदय बढ़ता हुआ मुझे उस अनन्त प्रेम की ओर ले जा रहा है जो साक्षात् भगवान है? लोग कहते हैं कि वह मनुष्य जो अपने चारों ओर होनेवाली बुराइयों को नहीं देख पाता, अच्छा काम नहीं कर सकता —वह एक तरह का अदृष्टवादी (Fatalist) बना बैठा रहता है। मैं तो ऐसा नहीं देखता हूँ। वरन् मेरी कार्य करने की शक्ति प्रचण्ड

वेग से बढ़ रही है और साथ ही असीम सफलता उसे मिल रही है। कभी-कभी मुझे एक प्रकार का भावावेश होता है। मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं जगत के सभी प्राणियों और वस्तुओं को आशीर्वाद दूँ—सभी वस्तुओं को चाहूँ और गले लगा लूँ। और मैं यह भी देखता हूँ कि पाप एक भ्रान्ति मात्र है। प्रिय फ्रैन्सिस, इस समय मैं उसी दशा में हूँ और मेरे प्रति तुम्हारे तथा मिसेज लेगेट के प्रेम और सहानुभूति का स्मरण कर मैं सचमुच आनन्द के आँसू बरसा रहा हूँ। मैं जिस दिन इस पृथ्वी में पैदा हुआ था उस दिन को धन्यवाद देता हूँ। यहाँ पर मुझे कितनी सहानुभूति, कितना प्रेम मिल गया है! और जिस अनन्त प्रेमस्वरूप ने मुझे जन्म दिया है, उसने मेरे भले और बुरे (बुरे शब्द से डरो मत) हर एक काम पर दृष्टि रखी है—क्योंकि मैं उसीके हाथ के एक यंत्र के सिवा और हूँ ही क्या, और रहा ही क्या? उसीकी सेवा के लिये मैंने अपना सब कुछ—अपने प्यारे जनों को, अपना सुख, अपना जीवन—त्याग दिया है। वह मेरा खिलाड़ी परम-प्रेमास्पद है—और मैं उसका खेल का साथी हूँ। इस प्रपंच में कोई युक्ति-परिपाटी नहीं है। ईश्वर पर भला किस युक्ति का वश चलेगा? वह तो लीलामय है—इस जगत-नाट्य के सभी अंशों में वह इस तरह हँसी और रुलाई का अभिनय कर रहा है। जो (Joe) जैसा कहती हैं—बड़ा तमाशा है! बड़ा तमाशा है!

यह दुनिया बड़े मज़े की जगह है, और सबसे मज़ेदार आदमी है—वह अनन्त प्रेमास्पद प्रभु। क्या यह खूब तमाशा नहीं है?

सब एक दूसरे के भाई हों या खेल के साथी ही, पर वास्तव में हैं ये मानो पाठशाला के हल्ला मचानेवाले बच्चे जो कि इस संसाररूपी मैदान में खेलकूद करने के लिये छोड़ दिये गये हैं। बस यही है न ? किसकी तारीफ करूँ और किसे बुरा कहूँ—सब तो उसीका खेल है। लोग इस प्रपंच की व्याख्या चाहते हैं—पर ईश्वर की व्याख्या तुम कैसे करोगे ? उसके न दिमाग है, न युक्ति। वह हम सभीको छोटे छोटे दिमाग और छोटी सी विचार-शक्ति देकर धोखा दे रहा है, पर अब की बार वह मुझे धोखा न दे सकेगा।

मैंने दो एक बातें सीख ली हैं। वह यह कि भाव, प्रेम और प्रेमास्पद—ये सब युक्ति-विचार, पाण्डित्य और वागाडम्बर के बहुत परे हैं। साकी ! (प्रेम का) प्याला भर दो, हम उसे पीकर मस्त हो जायँ !

तुम्हारा ही पागल
विवेकानन्द

(श्रीमती सरला घोषाल, बी.ए. सम्पादिका, 'भारती')

ॐ तत्सत्।

रोज बैंक,
बर्दवान राजबाटी, दार्जिलिङ्ग,
६ अप्रैल, १८९७

महाशया,

आपकी भेजी हुई 'भारती' पाकर विशेष अनुगृहीत हुआ। जिस उद्देश्य पर मेरा क्षुद्र जीवन सौंपा गया है वह आप जैसी

महानुभाव नारियों का बधाई पाने के योग्य हुआ, इससे अपने को धन्य समझता हूँ।

इस जीवन-संग्राम में नवीन भावों का संचार करनेवालों को उत्साह देनेवाले पुरुष बहुत ही कम मिलते हैं, ऐसी स्त्रियों का तो कहना ही क्या, विशेष कर हमारे अभागे देश में। इसलिये बंगाल की एक विदुषी नारी का साधुवाद सम्पूर्ण भारतीय पुरुषों के उच्च कण्ठ से दिये हुए धन्यवाद की अपेक्षा कहीं अधिक श्लाघ्य है।

ईश्वर करे कि आप जैसी बहुतसी महिलाएँ इस देश में पैदा हों और स्वदेश की उन्नति के लिये अपना जीवन निछावर कर दें।

आपके 'भारती' पत्रिका में लिखे हुये मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले लेख के बारे में मुझे थोड़ा बहुत कहना है ; वह यह है--

पश्चिमी देशों में धर्म का प्रचार भारत के कल्याण के ही लिये किया गया है और किया जायगा। मुझे इस बात पर पूरा विश्वास है कि बिना पश्चिमी लोगों की सहायता के हमलोग उन्नति नहीं कर सकेंगे। इस देश में न गुणों का आदर है, न अर्थबल है, और सबसे अधिक खेद का विषय तो यह है कि कर्म-कुशलता, यानी Practicality बिलकुल है ही नहीं।

उद्देश्य तो बहुत हैं, पर इनके साधन के उपाय इस देश में नहीं हैं। हमारे सिर हैं, पर हाथ नहीं। हमारे यहाँ वेदान्त का मत है, पर उसको काम में लाने की शक्ति नहीं। हमारी किताबों में

तो महान साम्यवाद है, लेकिन कार्य में हम बडी भद-बुद्धि रखते हैं। अति निःस्वार्थ निष्काम कर्म का भारत ही में प्रचार हुआ, परन्तु काम में हम अति निर्दय और हृदयहीन हैं—अपने मांस-पिण्ड शरीर को छोड़ किसी दूसरे का विचार ही नहीं कर सकते।

तो भी हम वर्तमान परिस्थिति के भीतर से काम पर अग्रसर हो सकते हैं; इसके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं। भला बुरा विचार करने की शक्ति तो सभीमें है, पर वीर वे ही हैं जो इन सब भ्रम-प्रमाद और दुःख से भरे हुए संसार की लहरों से न हटकर, एक हाथ से आंसू पोंछते और दूसरे हाथ से, बिना जरा भी हिले, बचने का मार्ग दिखाते हैं। एक ओर भेड़ियाधसान की नाईं चलनेवाला, जड़पिण्ड तुल्य समाज है और दूसरी ओर अस्थिर, धैर्यहीन, आग बरसानेवाले सुधारक!—कल्याण का मार्ग इन दोनों के बीच में है। मैंने जापान में सुना था कि वहाँ की लड़कियों को विश्वास है कि यदि खेलने की गुड़िया को दिल से प्यार किया जाय तो वह जी उठेगी। इसलिये जापान की लड़कियाँ गुड़िया को कभी तोड़ती नहीं। हे पुण्यवती, मुझे भी विश्वास है कि यदि कोई इन हतश्री, नष्ट-भाग्य, लुप्तबुद्धि, औरों के पैरों तले कुचल जाने वाले, सदा भूखे, झगड़ालू और दूसरों की भलाई से डाह करनेवाले भारतवासियों को दिल से प्यार करे तो भारत फिर से जाग उठेगा। जब सैकड़ों महाप्राण नरनारियाँ सब विलास और भोग-सुख की कामनाओं को छोड़

मन, वचन और कर्म से, दारिद्रय और मूर्खता के गहर भँवर में धीरे-धीरे डूबनेवाले करोड़ों स्वदेशीय नरनारियों का हित चाहेंगे तभी भारत जागेगा। अपने तुच्छ जीवन में भी मैंने यह प्रत्यक्ष किया है कि सदुद्देश्य, अकपटता और अनन्त प्रेम सारे संसार को जीतने में समर्थ हैं। उन गुणोंवाला एक भी मनुष्य करोड़ों कपटी और निर्दयी मनुष्यों की दुष्ट बुद्धि को दूर कर सकता है।

मेरा पश्चिमी देशों को फिर से जाना अनिश्चित है। अगर मैं जाऊँ भी तो समझिये कि वह भारत ही के लिये। इस देश में लोकबल कहाँ, धनबल भी कहाँ? उधर अनेक पाश्चात्य नरनारी भारत के हित के लिये भारतीय ढंग से, भारतीय धर्म का पालन करते हुए, नीच से नीच चाण्डाल आदि की सेवा करने को तैयार हैं। पर यहाँ ऐसे कितने हैं? और धनबल!—मेरे स्वागत का व्यय निभाने के लिये कलकत्ते वालों ने टिकट बेचकर मुझसे व्याख्यान दिलाये। मैं इसके लिये किसीको दोषी नहीं ठहराता, न किसी की ग्लानि ही करता हूँ। मैं तो सिर्फ इस बात का सुबूत देता हूँ कि बिना पाश्चात्य देशों से मिले हुए धनबल और लोकबल के हमारा कल्याण होना असम्भव है। इति शम्।

चिरकृतज्ञ और प्रभु के समीप आपका शुभाकांक्षी,

विवेकानन्द

दार्जिलिंग,
मार्फत श्रीयुत एम. एन्.बनर्जी,
२४ अप्रैल, १८९७

महाशया,

....आपने मेरी कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में जो पूछा है उस विषय में पहले यह कहना है कि "किसी भी काम की जाँच उसके फलानुसार करनी चाहिये।" अतः कार्य उस रूप में प्रारम्भ किया जाय जो अपेक्षित परिणामों के अनुरूप हो। अपनी मित्र कुमारी मूलर के मुँह से आपकी उदार बुद्धि, स्वदेशप्रेम और दृढ अध्यवसाय की बहुत सी बातें मैं सुन चुका हूँ और आपकी विद्वत्ता का प्रमाण तो प्रत्यक्ष ही है। इसलिये, आप मेरे क्षुद्र जीवन की तुच्छ चेष्टा की बात जानना चाहती हैं, मैं इसको अपना बड़ा सौभाग्य मानकर इस छोटे से पत्र में यथासम्भव निवेदन करता हूँ। परन्तु पहले मैं आपके विचार के लिये अपने अनुभव किये हुए सिद्धान्तों को आपकी सेवा में उपस्थित करता हूँ।

हमलोग सदा पराधीन हैं, अर्थात् इस भारतभूमि में साधारण मनुष्यों को कभी भी अपने अधिकारों का ज्ञान प्राप्त करने का मौका नहीं दिया गया। पश्चिमी देश आज कई सदियों से स्वाधीनता की ओर बड़े वेग से बढ़ रहे हैं। इस भारत में कौलीन्य-प्रथा से लेकर खानपान तक सभी विषय राजा ही निपटाते आये हैं। परन्तु पश्चिमी देशों में सभी कार्य प्रजा अपने आप करती है।

अब राजा किसी सामाजिक विषय में हाथ नहीं डालते, तोभी भारतीय जनता में अब तक आत्म-निर्भरता तो दूर रही, थोड़ा सा आत्म-विश्वास भी पैदा नहीं हुआ। जो आत्म-विश्वास वेदान्त की नींव है वह अब भी यहाँ कार्य में बिलकुल परिणत नहीं हुआ है। इसीलिये पश्चिमी प्रणाली—अर्थात् पहले उद्देश्य की चर्चा, जो करना है मिलजुलकर उसे कर डालना—इस देश में अभी तक सफल नहीं हुई और इसीलिये हम विजातीय राजाओं के अधीन इतने अधिक स्थितिशील (Conservative) दिखाई पड़ते हैं। यदि यह सत्य हो तो जनता में चर्चा या सार्वजनिक वाद-विवाद के द्वारा किसी काम के सिद्ध करने की चेष्टा करना वृथा है। "जब सिर ही नहीं तो सिर में दर्द कैसा?" जनता कहाँ है? इसके सिवा हम ऐसे निर्बल हैं कि यदि हम किसी विषय की चर्चा शुरू करते हैं तो उसीमें हमारा सारा बल लग जाता है और कोई काम करने के लिये कुछ भी शेष नहीं रह जाता। शायद इसीलिये हम बंगदेश में "बड़ी बड़ी तैयारियाँ और छोटा सा फल" सदा देखा करते हैं। दूसरी बात यह है कि जैसा मैं पहले ही लिख चुका हूँ—भारतवर्ष के धनिकों से हमें कुछ आशा नहीं है। जिनकी आशा है—अर्थात् जो युवक हैं उनमें धीरे धीरे और चुपचाप काम करते रहना ही अच्छा है। अब कार्य के विषय में कहता हूँ:—

वर्तमान सभ्यता—जो पश्चिमी देशों की है—और प्राचीन सभ्यता—जो भारत, मिश्र और रोम आदि देशों की है,—इनके

बीच् अन्तर उसी दिन से शुरू हुआ जब से शिक्षा, सभ्यता आदि उच्च जातियों से धीरे धीरे नीच जातियों में फैलने लगी। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जिस जाति की जनता में विद्या-बुद्धि का जितना अधिक प्रचार है वह जाति उतनी ही उन्नत है। भारतवर्ष के सत्यानाश का मूल कारण यही है कि देश की सम्पूर्ण विद्याबुद्धि राज-शासन और दम्भ के बल से केवल मुट्ठीभर लोगों के अधिकार में रखी गई है। यदि हमें फिर से उन्नति करनी है तो हमको उसी मार्ग पर चलना होगा, अर्थात् जनता में विद्या का प्रचार करना होगा। आधी सदी से समाज-सुधार की धूम मच रही है। मैंने दस वर्षों तक भारत के नाना स्थानों में घूम कर देखा कि देश में समाज-सुधारक सभाओं की बाढ़ सी आई है। परन्तु जिनका रुधिर शोषण करके हमारे "भद्रलोगों" ने अपना यह खिताब प्राप्त किया और कर रहे हैं, उन बेचारों के लिये एक भी सभा नज़र न आई! मुसलमान कितने सिपाही लाये थे? यहाँ अंग्रेज कितने हैं? चांदी के छः सिक्कों के लिये अपने बाप और भाई के गले पर चाकू फेरनेवाले लाखों आदमी सिवा भारत के और कहाँ मिल सकते हैं? सात सौ वर्ष के मुसलमान रियासत में छः करोड़ मुसलमान, और सौ वर्ष के ईसाई राज्य में बीस लाख ईसाई क्यों बने? मौलिकता ने बिलकुल देश को क्यों त्याग दिया है? क्यों हमारे सुदक्ष शिल्पी यूरोपवालों के साथ बराबरी करने में असमर्थ होकर दिनोंदिन दुर्दशा को प्राप्त हो रहे हैं? फिर किस बल से जर्मन कारीगरों ने अंग्रेज कारीगरों के कई सदियों के गड़े हुए दृढ आसन को हिला दिया?

केवल शिक्षा! शिक्षा! शिक्षा! यूरोप के बहुतेरे नगरों में घूम कर और वहाँ के गरीबों के भी अमन-चैन और विद्या को देखकर हमारे गरीबों की बात याद आती थी और मैं आँसू बहाता था। यह अन्तर क्यों हुआ? जवाब पाया—शिक्षा! शिक्षा से आत्म-विश्वास आता है और आत्म-विश्वास से अन्तर्निहित ब्रह्मभाव जाग पड़ता है। किन्तु हमारा ब्रह्मभाव क्रमशः निद्रित—संकुचित होता जा रहा है। न्यूयार्क में मैं देखता था कि आइरिश उपनिवेशवासी आ रहा है—अंग्रेजों के पैर से कुचला हुआ, कान्तिहीन, निःसम्बल, अति दरिद्र और महा मूर्ख; साथ में एक लाठी और उसके सिरे में लटकती हुई फटे कपड़ों की एक छोटीसी गठरी है। उसकी चाल और चितवन में डर ही डर की झलक पाई जाती है। छः ही महीने के बाद यही दृश्य बिलकुल और हो गया। अब वह खड़ा होकर चल रहा है, उसका वेश बदल गया है, उसकी चाल और चितवन में पहले का वह डर दिखाई नहीं पड़ता। क्यों ऐसा हुआ? हमारा वेदान्त कह रहा है कि वह आइरिश अपने देश में चारों तरफ घृणा से घिरा हुआ रहता रहता था—सारी प्रकृति एक स्वर से उसे कह रही थी कि "बच्चू, तुझे और आशा नहीं है, तू गुलाम ही पैदा हुआ और सदा गुलाम ही बना रहेगा।" आजन्म सुनते सुनते बच्चू को उसी का विश्वास हो गया। बच्चू ने अपने को सम्मोहित कर डाला कि वह अति नीच है। उसका ब्रह्मभाव संकुचित हो गया। परन्तु जब उसने अमेरिका में पैर रखे

तो चारों ओर से ध्वनि उठी कि "बच्चू, तू भी वही आदमी है जो हम लोग हैं। आदमियों ही ने सब काम किये हैं। तेरे और मेरे समान आदमी ही सब कुछ कर सकते हैं। धीरज धर।" बच्चू ने सिर उठाया और देखा कि बात हो ठीक ही है—बस, उसके अन्दर सोता हुआ ब्रह्म जाग उठा, मानो स्वयं प्रकृति ही ने कहा, "उत्तिष्ठत, जाग्रत"—उठो जागो, रुको मत जब तक मंज़िल न पहुँच जाओ।

वैसे ही हमारे लड़के जो शिक्षा पा रहे हैं वह भी बड़ी अभावात्मक (Negative) है। स्कूल के लड़के कुछ भी नहीं सीखते, सिर्फ जो कुछ अपना है उसका नाश हो जाता है, और इसका फल श्रद्धा का अभाव है। जो श्रद्धा वेदवेदान्त का मूलमन्त्र है, जिस श्रद्धा ने नचिकेता को यम के मुँह पर जाकर प्रश्न करने का साहस दिया, जिस श्रद्धा के बल से यह संसार चल रहा है—उसी श्रद्धा का लोप हो जाता है। गीता में कहा है कि अज्ञ और श्रद्धाहीन व्यक्ति का नाश हो जाता है। इसीलिये हम मृत्यु के इतने समीप हैं। अब उपाय है—शिक्षा का प्रचार। पहले, आत्म-विद्या। इससे मेरा मतलब जटाजूट, दण्ड, कमण्डलु और पहाड़ों की कन्दराओं से नहीं जो उस शब्द के उच्चारण करते ही याद आते हैं। तो मेरा मतलब क्या है? जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य संसार-बन्धन से छुटकारा पाता है, उससे क्या तुच्छ वैषयिक उन्नति नहीं हो सकेगी? इसमें कहना ही क्या है। मुक्ति, वैराग्य, त्याग—ये तो

सब बड़े श्रेष्ठ आदर्श हैं, परन्तु गीता में लिखा है कि "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" अर्थात् इस धर्म का थोड़ा सा भाग भी महाभय से त्राण करता है। द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, शैवसिद्धान्त, वैष्णव, शाक्त, यहाँ तक कि बौद्ध और जैन आदि जितने सम्प्रदाय भारतवर्ष में स्थापित हुए हैं सभी इस विषय पर सहमत हैं कि इसी जीवात्मा में अनन्त शक्ति अव्यक्त भाव से निहित है, चींटी से लेकर ऊँचे से ऊँचे सिद्ध पुरुष तक सभीमें वह आत्मा विराजमान है, और अन्तर जो कुछ है वह केवल प्रकाश की कमी बेशी ही में है। "वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्"—किसान जैसे खेतों की मेंढ़ तोड़ देता है और एक खेत का पानी दूसरे में चला जाता है वैसे ही आत्मा भी आवरण टूटते ही प्रकट हो जाती है (पातञ्जल योग-सूत्र, कैवल्यपाद।) अवकाश और उपयोगी देशकाल मिलते ही उस शक्ति का विकास हो जाता है। परन्तु चाहे विकास हो, चाहे न हो, वह शक्ति प्रत्येक जीव में—ब्रह्मा से लेकर घास तक में—मौजूद है। इस शक्ति को दर दर जाकर जगाना होगा।

यह हुई पहली बात। दूसरी बात यह है कि इसके साथ साथ विद्या भी सिखानी पड़ेगी। बात तो बड़ी सरल हुई, पर काम में किस तरह लाई जाय? हमारे देश में हजारों निःस्वार्थ, दयालु और त्यागी पुरुष हैं, जिनमें से कम से कम आधे उसी तरह विद्या के शिक्षक बनाये जा सकते हैं जिस तरह वे बिना पारिश्रमिक लिये घूमघूम कर धर्मशिक्षा दे रहे हैं। इसके लिये पहले एक एक राज-

भागों में एक एक केन्द्र होना चाहिये जहाँ से धीरे धीरे भारत के सब स्थानों में फैलना होगा। मद्रास और कलकत्ते में हाल ही में दो केन्द्र बने हैं, कुछ और भी जल्द होने की आशा है।' एक बात और है कि गरीबों की शिक्षा प्रायः बातों ही से या मौखिक रूप से दी जानी चाहिये। स्कूल आदि का अभी समय नहीं आया। धीरे धीरे उन मुख्य केन्द्रों में खेती, व्यापार आदि भी सिखाये जायेंगे और कर्मशालाएँ भी खोली जायेंगी, जिससे शिल्प आदि की इस देश में उन्नति हो। उन कर्मशालाओं का माल यूरोप और अमेरिका में बेचने के लिये उन देशों में भी सभाएँ स्थापित हुई हैं और होंगी। सिर्फ एक कठिनाई यह है कि जिस प्रकार पुरुषों के लिये प्रबन्ध हो उसी प्रकार स्त्रियों के लिये भी होना चाहिये, परन्तु ऐसा होना इस देश में बड़ा कठिन है, यह आप जानती हैं। फिर भी इन सब कामों के लिये जिस धन का प्रयोजन हो वह भी इंग्लैण्ड आदि पश्चिमी देशों से आयेगा। मुझे इस बात का दृढ़ विश्वास है कि जिस साँप ने काटा है वही अपना विष उठायेगा। इसीलिये हमारे धर्म का यूरोप और अमेरिका में प्रचार होना चाहिये। आधुनिक विज्ञान ने ईसाई आदि धर्मों की भित्ति बिलकुल चूर चूर कर दी है, इसके सिवाय विलास ने धर्मवृत्ति ही का प्रायः नाश कर डाला है। यूरोप और अमेरिका आशाभरी दृष्टि से भारत की ओर ताक रहे हैं। परोपकार का, शत्रु के किले पर अधिकार जमाने का, यही समय है। पश्चिमी देशों में नारियों का ही राज,

नारियों का ही बल और उन्हीं की प्रभुता है। यदि आप जैसी वेदान्त जाननेवाली तेजस्विनी और विदुषी महिला इस समय इङ्गलैण्ड जायँ तो मैं निश्चित कहता हूँ कि एक एक साल में कम से कम दस हजार नर-नारियाँ भारतीय धर्म ग्रहण कर कृतार्थ हो जायँ। अकेली रमाबाई ही हमारे यहाँ से गई थीं, अंग्रेजी भाषा या पश्चिमी विज्ञान और शिल्प आदि में उनकी गति बहुत ही कम थी, तो भी उन्होंने सब को चकरा दिया था। यदि आप जैसी कोई पधारें तो इङ्गलैण्ड हिल जाय, अमेरिका का तो कहना ही क्या? मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ कि यदि भारतीय नारियाँ देशी पोशाक पहने भारत के ऋषियों के मुँह से निकले हुए धर्म का प्रचार करें तो एक ऐसी बड़ी तरंग उठेगी जो सारी पश्चिमी भूमि को डुबा देगी। क्या मैत्रेयी, खना, लीलावती, सावित्री और उभयभारती की इस जन्मभूमि में किसी और नारी को यह साहस नहीं होगा? प्रभु ही जाने। इङ्गलैण्ड पर हम लोग धर्म के बल से अधिकार करेंगे, उसे जीत लेंगे—"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"—जाने की और दूसरी राह ही नहीं। क्या सभा-समितियों के द्वारा इस प्रतापी असुर के हाथ से उद्धार हो सकता है? असुर को देवता बनाना होगा। मैं तो एक दीन भिक्षुक परिव्राजक हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ, मैं तो अकेला और असहाय हूँ। आपलोगों के पास धन है, बुद्धि है और विद्या भी है—क्या आपलोग इस मौके को हाथ से जाने देंगी? अब इङ्गलैण्ड, यूरोप और अमेरिका पर विजय पाना—यही महामंत्र है—इसीसे देश का भला होगा।

Expansion is the sign of life and we must spread the world over with our spiritual ideals. अर्थात् विस्तार ही जीवन का चिन्ह है, और हमें सारी दुनिया में अपने आध्यात्मिक आदर्शों को फैलाना चाहिये। हाय! मेरा शरीर कितना निर्बल है, तिसपर बंगाली का शरीर—इस थोड़े परिश्रम से ही प्राणघातक व्याधि ने इसे घर लिया। परन्तु आशा है कि "उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा, कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"— अर्थात् मेरे समानगुणवाला कोई और है या होगा, क्योंकि काल का अन्त नहीं और पृथ्वी भी विशाल है।

सर्वशक्तिमती विश्वेश्वरी आपके हृदय में अवतीर्ण हों।

भवदीय

विवेकानन्द

(एक अमेरिकन महिला को)

अल्मोड़ा,

९ जुलाई, १८९७

प्यारी बहन,

तुम्हारे पत्र की पंक्तियों में जो निराशा का भाव झलक रहा है उसे देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। इसका कारण भी मुझे मालूम है। तुम्हारी चेतावनी के लिये धन्यवाद, मैं उसका उद्देश भलीभाँति

समझ गया हूँ। मैंने राजा अजित सिंह के साथ इंग्लैण्ड जाने का प्रबन्ध किया था, पर डाक्टरों की मनाही के कारण वह निष्फल हुआ। हैरियट उनसे मिली हैं, यह सुनकर मुझे अत्यन्त हर्ष होगा। वे भी तुममें से किसीसे भी मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे।

मुझे अमेरिका के कई एक अखबारों के बहुत से कटिंग (खण्ड) मिले जिनमें अमेरिकावाली स्त्रियों के सम्बन्ध में मेरी उक्तियों की भीषण निन्दा की गई है, मुझे यह अनोखी खबर भी दी गई है कि मैं अपनी जाति से खारिज कर दिया गया हूँ! जैसे मेरी कोई जाति भी थी जिससे मैं निकाला जाऊँ! संन्यासी की जाति कैसी?

जातिच्युत होना तो दूर रहा, मेरे पश्चिमी देशों में जाने से यहाँ समुद्रयात्रा के विरुद्ध जो भाव थे वे बहुत कुछ दब गये। यदि मुझे जातिच्युत होना पड़ता तो साथ ही साथ भारत के आधे नरेशों और प्रायः सारे शिक्षित समुदाय को भी वैसा होना पड़ता। यह तो हुआ ही नहीं, बल्कि मेरे पूर्वाश्रम की जाति के एक विशिष्ट राजा ने मेरी अभ्यर्थना के लिये एक दावत की जिसमें उस जाति के बहुत से गण्यमान्य लोग उपस्थित थे। भारत में संन्यासी सम्प्रदाय किसी किसी के साथ भोजन नहीं करते क्योंकि देवताओं के लिये मनुष्यों से खानपान करना अमर्यादासूचक है। संन्यासी नारायण समझे जाते हैं, बाकी सब तो निरे मनुष्य ठहरे। प्रिय—, बहुत राज-वंशधरों तक ने इन पैरों को धोया, पोंछा और पूजा है, और देश के एक छोर से दूसरे छोर तक मेरी ऐसी संवर्धना होती रही जो किसीको प्राप्त नहीं हुई।

इतना ही कहने से बस होगा कि जब मैं रास्तों में निकलता तब शान्तिरक्षा के लिये पुलिस की ज़रूरत पड़ती थी! जातिच्युत करना इसे ही कहते हैं न? हाँ, इससे पादड़ियों के हाथ के तोते उड़ गये। यहाँ वे हैं भी कौन? बिलकुल नगण्य हैं। हमें उनके अस्तित्व की खबर ही नहीं रहती। बात यह हुई कि अपनी एक वक्तृता में मैंने इंग्लिश चर्चवाले सज्जनों को छोड़ बाकी कुल पादड़ियों के खान्दान के बारे में कुछ कहा था। प्रसंगवश मुझे अमेरिका की 'चर्च'वाली कट्टर स्त्रियों और उनकी अन्यथा कुत्साएँ फैलाने की शक्ति का भी उल्लेख करना पड़ा था। इसीको पादड़ी लोग, मेरे अमेरिका के कार्य को बिगाड़ने के लिये, सारी अमेरिकन स्त्रीजाति पर लांछन कहकर शोर मचा रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि अपने विरुद्ध जो कुछ कहा जाय वह अमेरिकावासियों को पसन्द ही होगा। प्रिय —, अगर मान भी लिया जाय कि मैंने अमेरिकनों के विरुद्ध कड़ी से कड़ी बातें कही हैं, तो भी क्या वे उनसे हमारी माताओं और बहिनों के बारे में कही गई घृणित बातों के लक्षांश को भी चुका सकेंगी? क्रिस्तान अमेरिकन नरनारी हमें भारतीय वर्वर (Heathen) कहकर जो घृणा का भाव हमसे पोषण करते हैं, क्या सात समुद्रों में उसे बहा देने लायक पानी मौजूद होगा? हमने उनका बिगाड़ा ही क्या? अमेरिकावासी पहले अपनी समालोचना सु[illegible]कर धैर्यावलम्बन करना सीखें, तब कहीं दूसरों की समालोचना करें। मनस्तत्त्व की यह बात सबको विदित है कि जो लोग दूसरों की गाली-गलौज करने में बड़े तत्पर रहते

हैं वे उनसे अपनी तनिक भी समालोचना सहन नहीं कर सकते। फिर उनका मैं ऋणी थोड़े ही हूँ। तुम्हारे परिवार, मिसेज़ बुल, लेगट परिवार और दो चार सहृदय जनों को छोड़ किसने मुझपर कृपा प्रकट की! अपने विचारों को व्यावहारिक रूप देने में किसने मेरा हाथ बटाया? मुझे परिश्रम करते करते प्रायः मौत का सामना करना पड़ा है। मुझे अपनी सारी शक्तियाँ अमेरिका में खर्च करनी पड़ीं—इसलिये कि वहाँवाले अधिकतर उदार और धार्मिक होना सीखें। इंग्लैण्ड में छः ही महीने काम किया। वहाँ कुत्सा का नाम न रहा, सिवा एक के और वह भी एक अमेरिकन स्त्री की करतूत थी, जिसे जानकर मेरे अंगरेज मित्रों को तसल्ली मिली। दोष लगाना तो दूर रहा, बल्कि इंग्लिश चर्च के अनेक अच्छे अच्छे पादड़ी मेरे पक्के दोस्त बने और बिना माँगे मुझे अपने कार्य के लिये बहुत सहायता मिली, तथा भविष्य में और अधिक मिलने की पूरी आशा है। वहाँ एक समिति मेरे कार्य की देखभाल कर रही है और उसके लिये धन इकट्ठा कर रही है। वहाँ के चार प्रतिष्ठित व्यक्ति मेरे काम में सहायता करने के लिये अनेक असुविधाएँ झेलते हुए भी मेरे साथ भारत को आये हैं। दर्जनों और तैयार थे और फिर जब मैं वहाँ जाऊँगा, सैकड़ों तैयार होंगे।

प्रिय—, मेरे लिये मत डरना। मार्किन लोग बड़े हैं केवल यूरोप के होटलवालों और बजाजों की तथा अपनी दृष्टि में। संसार बहुत बड़ा है, और अमेरिकावालों के रूठ जाने पर भी मेरे लिये

कोई न कोई जगह जरूर रहेगी। कुछ भी हो, मुझे अपने कार्य से बड़ी प्रसन्नता है। मैंने कभी कोई मन्सूबा नहीं बाँधा। घटनाएँ जैसी होती गईं, मैं भी उनका वैसा ही उपयोग करता गया। 'एक ही चिन्ता मेरे मस्तिष्क में दहक रही थी—वह यह कि भारतीय निम्न-जातियों को उठाने के लिये एक यंत्र बनाऊँ। वह किसी हद तक फलीभूत हो चुकी है। तुम्हारा दिल यह देखकर खुश हो जाता कि किस तरह मेरे लड़के दुर्भिक्ष, व्याधि और दुर्दशा के बीच में काम कर रहे हैं—हैजे से पीड़ित परिया की चटाई के पास बैठे उसकी सेवा कर रहे हैं, और भूखे चण्डाल को खिला रहे हैं। प्रभु मेरी और उन सबकी सहायता कर रहे हैं। मनुष्य क्या है? वह—मेरा प्रियतम ईश्वर—मेरे साथ है। क्या मेरे अमेरिका और इङ्गलैण्ड में रहते समय, और क्या भारत के एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते वक्त—जब मुझे कोई जानता भी न था—वही मेरे साथ रहा। लोग क्या कहें, इसकी मुझे क्या परवा? वे तो बच्चे हैं, वे उससे अधिक क्या जानेंगे? क्या! आत्मा का साक्षात्कार करनेवाला, और सारे सांसारिक प्रपञ्चों की असारता जाननेवाला मैं बच्चों की तोतली बोलियों से अपने मार्ग से हट जाऊँ? क्या मैं वैसा ही दिखता हूँ?

मुझे अपने बारे में बहुत कुछ कहना पड़ा, क्योंकि मुझे तुमको कैफियत देनी थी। मैं अपने दिल में जान रहा हूँ कि अपना कार्य समाप्त हो चुका—अधिक से अधिक तीन ही चार वर्ष आयु के

और बचे हैं। मुझे अपनी मुक्ति की इच्छा अब बिलकुल नहीं। सांसारिक भोग तो मैंने कभी चाहा ही नहीं। मुझे सिर्फ अपने यन्त्र को मजबूत और कार्योपयोगी देखना है, और फिर निश्चित रूप से यह जानकर कि कम से कम भारत में मैंने मानवजाति के कल्याण का एक ऐसा यन्त्र स्थापित कर दिया जिसका कोई शक्ति नाश नहीं कर सकती; मैं सो जाऊँगा, और आगे क्या होनेवाला है, इसकी परवा नहीं करूँगा। मेरी अभिलाषा है कि मैं बारबार जन्म लूँ और हजारों दुःख भोगता रहूँ, ताकि मैं उस एकमात्र ईश्वर की पूजा कर सकूँ जिसकी सचमुच सत्ता है और जिसका मुझे विश्वास है—अर्थात् सम्पूर्ण आत्माओं की समष्टि रूपी ईश्वर की। सबसे बढ़कर, सभी जातियों और वर्णों के पापी, तापी और दरिद्र रूपी ईश्वर ही मेरा विशेष उपास्य है।

"जो उच्च नीच सभी है; परम साधु भी है और पापी भी; जो देवता है और कीट है; उस प्रत्यक्ष, जानने योग्य, यथार्थ, सर्वशक्तिमान ईश्वर की उपासना करो। बाकी सब मूर्तियाँ तोड़ डालो।

"जिसमें न पूर्वजन्म है न परजन्म; न मृत्यु है न आवागमन; जिसमें हम सदा एक होकर रहे हैं और रहेंगे; उसी ईश्वर की उपासना करो। बाकी सब मूर्तियाँ तोड़ डालो।"

मुझे समय कम है। मेरा जो कुछ कहना है सब साफ साफ कह देना पड़ेगा—उससे किसी को पीड़ा हो या क्रोध, इसकी क्या परवा! इसलिये प्रिय—, यदि मेरे मुँह से कुछ कड़ी बातें निकल

पड़ें तो मत घबराना, क्योंकि मेरे पीछे जो शक्ति है वह विवेकानन्द नहीं, किन्तु स्वयं ईश्वर है, और वही सबसे ठीक जानता है। यदि मैं संसार को खुश करने चला तो इससे उसे हानि ही पहुँचेगी। लोगों का बहुमत गलत है, क्योंकि हम देखते हैं कि वे ही जगत् का नियन्त्रण कर रहे हैं, तो भी इसकी इतनी दुर्गति रही है। हरएक नवीन भावना विरोध की सृष्टि अवश्य करेगी। सभ्य समाज में वह व्यक्त होगा शिष्ट विद्रूप से, और वर्बर समाज में नीच चिल्लाहट और घृणित बदनामी से।

ये केंचुए भी एक दिन खड़े होंगे। ये बच्चे भी किसी रोज प्रकाश देख पायेंगे। अमेरिकावाले नये मद से मतवाले हैं। हमारे देश पर सैकड़ों अभ्युदय की बाढ़ें आईं और गुजर चुकी हैं। हमने वह सबक सीखा है जिसे बच्चे अभी नहीं समझ सकते। यह सब झूठी दिखावट है। यह बीभत्स संसार माया है। इसे त्याग दो और सुखी हो। काम-कांचन की भावनाएँ छोड़ दो। ये ही एकमात्र बन्धन हैं। विवाह, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध और धन—ये ही एकमात्र प्रत्यक्ष शैतान हैं। सारे सांसारिक प्रेम की जड़ देह और एकमात्र देह ही है। काम-कांचन को भगा दो। वे भागे कि हमारी आध्यात्मिक दृष्टि खुल गई—और आत्मा ने अपनी अनन्त शक्ति फिर से प्राप्त की।

तुम्हारा परम स्नेही,

विवेकानन्द

(एक बङ्गाली शिष्या को)

देवघर, वैद्यनाथ,

३ जनवरी,

माँ,

तुम्हारे पत्र में कई एक अति कठिन प्रश्नों का जिक्र हुआ है। एक छोटी सी चिट्ठी में उन सब प्रश्नों का विस्तार पूर्वक उत्तर देना सम्भव नहीं, परन्तु बहुत संक्षिप्त रीति से उत्तर लिखता हूँ।

(१) ऋषि, मुनि, या देवता, किसीकी सामर्थ्य नहीं कि सामाजिक नियमों की प्रवर्तना करें। जब समाज के पीछे किसी समय की आवश्यकताओं का झोंका लगता है तब वह आत्मरक्षा के लिये आप ही आप कुछ आचारों की शरण लेता है। ऋषियों ने केवल उन आचारों को एकत्र कर दिया है, बस। जैसे आत्मरक्षा के लिये मनुष्य कभी कभी बहुत से ऐसे उपायों का प्रयोग करता है जो उस समय के लिये तो रक्षा पाने के उपयोगी हों परन्तु भविष्य के लिये बड़े ही अहितकर ठहरें, वैसे ही समाज भी बहुत अवसरों पर उस समय के लिये तो बच जाता है, पर जिस उपाय से वह बचता है वही अन्त में भयङ्कर हो जाता है।

जैसे, हमारे देश में विधवा-विवाह का निषेध। ऐसा न सोचना कि ऋषियों या दुष्ट पुरुषों ने उन नियमों को बनाया है। यद्यपि पुरुष स्त्रियों को पूर्णतया अपने आधीन रखना चाहते हैं तोभी बिना

समाज की सामयिक आवश्यकता की सहायता लिये वे कभी कृतकार्य नहीं होते। इन आचारों में से दो विशेष ध्यान देने योग्य हैं—

(क) नीच जातियों में विधवा ब्याही जाती है।

(ख) भद्र जातियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है।

अब यदि हरएक लड़की का विवाह करना ही नियम हो तो एक एक लड़की के लिये एक एक पति मिलना ही मुश्किल है, फिर दो तीन कहाँ से आयें? इसीलिये समाज ने एक तरफ की हानि कर दी है, यानी जिसको एक बार पति मिल गया है उसको वह फिर पति नहीं देता; अगर दे तो एक कुमारी को पति नहीं मिलेगा। दूसरी तरफ देखिये कि जिन जातियों में स्त्रियों की कमी है उनमें ऊपर लिखी बाधा न होने से विधवा भी ब्याही जाती है।

उसी प्रकार जातिभेद तथा अन्यान्य सामाजिक आचारों के विषय में भी सोचना चाहिये।

पश्चिमी देशों में कुमारियों को पति मिलना दिन पर दिन कठिन होता जा रहा है। यदि किसी सामाजिक आचार को बदलना हो तो पहले यही ढूंढना चाहिये कि उस आचार की जड़ में क्या आवश्यकता है, और केवल उसी के बदलने से वह आचार आप ही आप नाश हो जायगा। ऐसा बिना किये केवल निन्दा या स्तुति से काम नहीं चलेगा।

(२) अब प्रश्न यह है कि क्या समाज के बनाये हुए ये नियम, अथवा समाज का संगठन ही उस समाज के जनसाधारण के हितार्थ हैं ? बहुत से लोग कहते हैं कि हाँ, पर कोई कोई कहते हैं कि ऐसा नहीं, कुछ मनुष्य औरों की अपेक्षा अधिक शक्ति प्राप्त कर दूसरों को धीरे धीरे अपने आधीन कर लेते हैं और कुछ बल या कौशल से अपना मतलब हासिल कर लेते हैं। यदि यह सच है तो इस बात का क्या अर्थ है कि अशिक्षित मनुष्यों को स्वाधीनता देने में डर रहता है ? और फिर स्वाधीनता का अर्थ ही क्या है ?

मेरे आपका धन आदि छीन लेने में कोई बाधा न रहने का नाम तो स्वाधीनता है नहीं, बल्कि तन, मन या धन का, बिना दूसरों को हानि पहुँचाये, इच्छानुसार उपयोग करने ही का नाम स्वाधीनता है। यह तो मेरा स्वाभाविक अधिकार है, और उस धन, विद्या या ज्ञान को प्राप्त करने में समाज के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को समान सुभीता रहनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो लोग कहते हैं कि अशिक्षित या गरीब मनुष्यों को स्वाधीनता देने से अर्थात् उनको अपने शरीर और धन आदि पर पूरा अधिकार देने, तथा उनके वंशजों को धनी और ऊँचे दर्जे के आदमियों के वंशजों की भाँति ज्ञान प्राप्त करने एवं अपनी दशा सुधारने में समान सुभीता देने से वे उन्मार्गगामी बन जायेंगे, तो क्या वे समाज की भलाई के लिये ऐसा कहते हैं अथवा स्वार्थ से अन्धे होकर ? इङ्गलैण्ड में भी मैंने इस बात को सुना है कि अगर नीच लोग लिखना पढ़ना सीख जायेंगे तो फिर हमारी नौकरी कौन करेगा ?

मुट्ठी भर अमीरों के विलास के लिये लाखों स्त्री-पुरुष अज्ञता के, अन्धकार और अभाव के नरक में पड़े रहें! क्योंकि उन्हें धन मिलने पर या उनके विद्या सीखने पर समाज डाँवाडोल हो जायगा!!

समाज है कौन? वे लोग जिनकी संख्या लाखों है? या आप और मुझ जैसे दस पाँच उच्च श्रेणीवाले!!

यदि यह सच भी हो तोभी आप और मुझमें ऐसा घमण्ड किस बात का है कि हम और सब लोगों को मार्ग बतायें? क्या हमलोग सर्वज्ञ हैं?

"उद्धरेदात्मनाऽत्मानम्"—आप ही अपना उद्धार करना होगा। सब कोई अपने आपको उबारे। सभी विषयों में स्वाधीनता, यानी मुक्ति की ओर अग्रसर होना ही पुरुषार्थ है। जिससे और लोग दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वाधीनता की ओर अग्रसर हो सकें, उसमें सहायता देना और स्वयं भी उसी तरफ बढ़ना ही परम पुरुषार्थ है। जो सामाजिक नियम इस स्वाधीनता के स्फुरण में बाधा डालते हैं वे ही अहितकर हैं और ऐसा करना चाहिये जिससे वे जल्द नाश हो जायँ। जिन नियमों के द्वारा सब जीव स्वाधीनता की ओर बढ़ सकें उन्हीं की पुष्टि करनी चाहिये।

इस जन्म में दर्शन होते ही किसी व्यक्तिविशेष पर—चाहे वह वैसा गुणवान भले ही न हो—हमारा जो हार्दिक प्रेम हो जाता है इसे हमारे यहाँ के पण्डित लोगों ने पूर्व जन्म का ही फल बतलाया है

इच्छाशक्ति के बारे में तुम्हारा प्रश्न बड़ा ही सुन्दर है और यही समझने योग्य विषय है। वासनाओं का नाश सभी धर्मों का सार है पर इस साथ ही इच्छा का भी निश्चय नाश हो जाता है, क्योंकि वासना तो इच्छाविशेष ही का नाम है। अच्छा, तो यह जगत क्यों हुआ? और इन इच्छाओं का विकास ही क्यों हुआ? कई एक धर्मों का कहना है—बुरी इच्छाओं का ही नाश होना चाहिये, न कि सदिच्छाओं का। इस लोक में वासना का त्याग परलोक में भोगों के द्वारा पूर्ण हो जायगा। अवश्य पण्डित लोग इस उत्तर से संतुष्ट नहीं हैं। दूसरी तरफ बौद्ध लोग कहते हैं कि वासना दुःख की जड़ है, और उसका नाश ही श्रेयः है। परन्तु मच्छड़ मारते हुए आदमी ही को मार डालने की तरह, बौद्ध आदि मतों के अनुसार दुःख का नाश करने के प्रयत्न में हमने अपनी आत्मा को भी मार डाला है।

सिद्धान्त यह है कि हम जिसे इच्छा कहते हैं वह उससे भी बढ़कर किसी अवस्था का निम्न परिणाम है। 'निष्काम' का अर्थ है इच्छाशक्ति रूप निम्न परिणाम का त्याग और उच्च परिणाम का आविर्भाव होना। वह उच्च परिणाम मन और बुद्धि के गोचर नहीं; परन्तु जैसे देखने में मुहर रुपये और पैसे से अत्यन्त भिन्न होने पर भी हम निश्चित जानते हैं कि मुहर दोनों ही से श्रेष्ठ है, वैसे ही वह उच्चतम अवस्था—उसे मुक्ति कहो या निर्वाण या और कुछ—मन बुद्धि के गोचर न होने पर भी इच्छा आदि सब शक्तियों से बढ़कर

है। यद्यपि वह 'शक्ति' नहीं, तोभी शक्ति उसीका परिणाम है इसीलिये वह बढ़कर है; यद्यपि वह इच्छा नहीं तथापि इच्छा उसीका निम्न परिणाम है, इसलिये वह उत्कृष्टतर है। अब समझलो, पहले सकाम, और आगे चलकर निष्काम रीति से ठीक ठीक इच्छाशक्ति के उपयोग का फल यह होगा कि इच्छाशक्ति ही पहले से बहुत उन्नत दशा को पहुँच जायगी।

गुरुमूर्ति का पहले ध्यान करना पड़ता है, बाद में उसे लय कर इष्ट-मूर्ति की स्थापना करनी पड़ती है। यहाँ जिस पर प्रीति हो वही इष्ट के रूप में ग्राह्य है।........

मनुष्य में ईश्वर-बुद्धि का आरोप करना बड़ा कठिन है सही, पर प्रयत्न करने से अवश्य सफलता मिलती है। ईश्वर हरएक मनुष्य में विराजता है, चाहे वह इसे जाने या न जाने; तुम्हारी भक्ति से उस ईश्वरत्व का उसमें अवश्य ही उदय होगा।

सदा शुभाकांक्षी

विवेकानन्द

हमारे अन्य प्रकाशन

हिन्दी विभाग

१-३. **श्रीरामकृष्णवचनामृत**-तीन भागों में-अनु० प. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; प्रथम भाग (द्वितीय संस्करण) मूल्य — ६); द्वितीय भाग—मूल्य ६); तृतीय भाग-मूल्य—७॥)

४-५ **श्रीरामकृष्णलीलामृत**—(विस्तृत जीवनी)—(द्वितीय संस्करण)-दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य .... ५)

६. **विवेकानन्द-चरित**-(विस्तृत जीवनी)-सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, मूल्य ६)

७. **विवेकानन्दजी के संग में**-(वार्तालाप)-शिष्य शरच्चन्द्र, मूल्य ५|)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

८. **भारत में विवेकानन्द**-(विवेकानन्दजी के भारतीय व्याख्यान)		५)
९. **धर्मविज्ञान**	(प्रथम संस्करण)	१॥=)
१०. **कर्मयोग**	(प्रथम संस्करण)	१॥=)
११. **हिन्दू धर्म**	(प्रथम संस्करण)	१॥)
१२. **प्रेमयोग**	(द्वितीय संस्करण)	१|=)
१३. **भक्तियोग**	(द्वितीय संस्करण)	१|=)
१४. **आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग**	(तृतीय संस्करण)	१|)
१५. **परिव्राजक**	(तृतीय संस्करण)	१|)
१६. **प्राच्य और पाश्चात्य**	(तृतीय संस्करण)	१|)
१७. **महापुरुषों की जीवनगाथायें**	(प्रथम संस्करण)	१|)
१८. **राजयोग**	(प्रथम संस्करण)	१=)
१९. **स्वाधीन भारत ! जय हो !**	(प्रथम संस्करण)	१=)
२०. **धर्मरहस्य**	(प्रथम संस्करण)	)
२१. **भारतीय नारी**	(प्रथम संस्करण)	|)
२२. **शिक्षा**	(प्रथम संस्करण)	-)
२३. **शिकागो वक्तृता**	(प्रथम संस्करण)	=)
२४. **हिन्दू धर्म के पक्ष में**	(प्रथम संस्करण)	=)
२५. **मेरे गुरुदेव**	(चतुर्थ संस्करण)	=)

२६. वर्तमान भारत (तृतीय संस्करण) ॥)
२७. पवहारी बाबा (प्रथम संस्करण) ॥)
२८. मेरा जीवन तथा ध्येय (प्रथम संस्करण) ॥)
२९. मरणोत्तर जीवन (प्रथम संस्करण) ॥)
३०. भगवान रामकृष्ण धर्म तथा संघ—स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शारदानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द; मूल्य ॥=)
३१. मेरी समर-नीति (प्रथम संस्करण) ।≡)
३२. परमार्थ-प्रसंग—स्वामी विरजानन्द, (आर्ट पेपर पर छपी हुई)
कपड़े की जिल्द, मूल्य ३॥)
कार्डबोर्ड की जिल्द, ,, ३।)

मराठी विभाग

१-२. श्रीरामकृष्ण-चरित्र—प्रथम भाग (तृतीय संस्करण), द्वितीय भाग, (द्वितीय संस्करण) छापत आहे.
३. श्रीरामकृष्ण-वाक्सुधा— (द्वितीय संस्करण) ॥।=)
४. शिकागो-व्याख्यानें— स्वामी विवेकानंद ॥=)
५. माझे गुरुदेव— (द्वितीय संस्करण) स्वामी विवेकानंद ॥=)
६. हिंदु-धर्माचें नव जागरण— स्वामी विवेकानंद ॥-)
७. पवहारी बाबा— स्वामी विवेकानंद ॥)

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर-१, मध्यप्रान्त